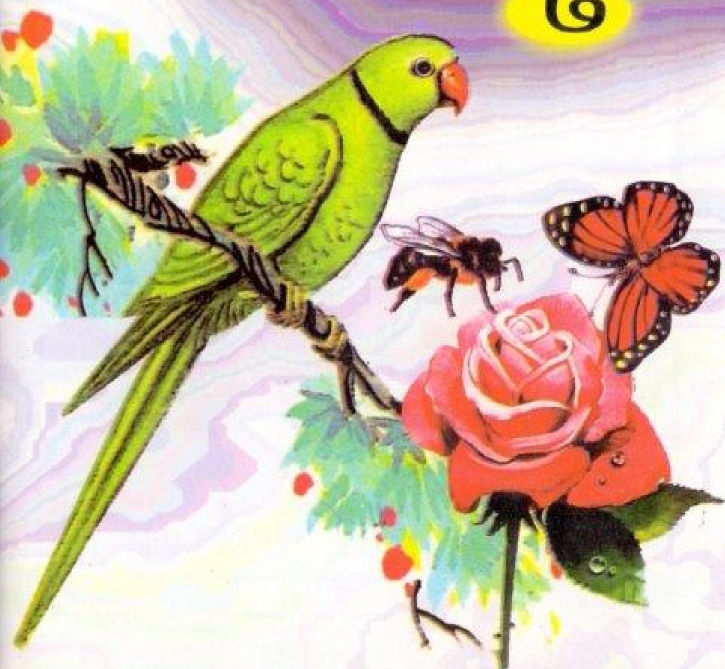
बाल निर्माण की कहानियाँ

७



बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग-७)



लेखिका

डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

दूरभाष : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स : (०५६५) २५३०२००



पुनरावृत्ति सन्-२०१४ मूल्य : ११) रुपए

विषय-सूची

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

अपना और पराया

मनोहर वन में एक बार बहुत जोरों का तूफान आया। वैसा पहले न किसी ने देखा था और न सुना था। मूसलाधार पानी बरस रहा था, रह-रहकर बिजली कड़क रही थी। हवा इतनी तेज थी कि सभी को उड़ाए ले जा रही थी। वृक्षों के कोटरों में रहने वाले नन्हें पक्षियों के दिल काँप उठे। उस भयंकर तूफान में वृक्ष भी न खड़े रह पाए और एक-एक करके वे गिरने लगे।

जैसे-जैसे तूफान खतम हुआ। पक्षी डरते-डरते अपने-अपने घोंसलों से निकले। पूरे वन में दस पक्षी ही जीवित थे। शेष सभी उस तूफान की भेंट चढ़ चुके थे। अपने-अपने संबंधियों के शोक में वे सभी रोने लगे। दो दिन तक उन्होंने खाने की ओर मुँह तक भी न उठाया।

पूरे के पूरे वन में बस एक बरगद दादा ही बचे थे और सारे वृक्ष तूफान में गिर चुके थे। बरगद दादा से पक्षियों का दुःख देखा न गया। उन्होंने प्यार से सभी को अपने पास इकट्ठा किया और बोले—"बच्चो! जैसी भी स्थिति है, उसका धैर्य से सामना करो। सोचो! भगवान की इस लीला के आगे अब किया भी क्या जा सकता है? सुख और दुःख यह तो जीवन में निश्चित रूप से आते ही हैं। उठो! साहस से स्थिति का सामना करो। दुःख को भी भगवान के प्रसाद के रूप में ले लो और नए सिरे से निर्माण में जुट जाओ। तुम्हारा जीवन अद्भुत रूप से जगमगा उठेगा।"

रजत कबूतर को वट दादा की ये बातें तनिक भी अच्छी न लगीं। वह बोला—"दादाजी! मेरे बहू-बच्चे सभी तो तूफान में मर गए। अब आप ही बताइए मैं भला जीऊँ तो किसके लिए? मैं तो

आपकी डाली में ही फाँसी लगाकर मर जाऊँगा।" यह कहकर वह सचमुच बरगद के पेड़ की डाल पर लटकने लगा।

वट दादा का तो दिल ही काँप गया। उसे अपनी गोद में छिपाते हुए बोले—"न बेटा न! ऐसा बुरा काम न करो।"

फिर और पक्षियों को समझाते हुए बोले—"देखो! संसार में न कोई अपना है और न पराया। जिसे हम अपना मानकर चलते हैं, जिसके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं, वही हमारा बन जाता है। जिसके साथ हम बुरा व्यवहार करते हैं, वही पराया बन जाता है। हमारा परिवार ही हमारा घर नहीं है, पूरा संसार हमारा घर है। तुम सभी आपस में मिल-जुलकर परिवार की भाँति रहो। तुम सभी के अकेलेपन का, संबंधियों के मरने का दुःख धीरे-धीरे दूर हो जाएगा।"

सभी पक्षियों को वट दादा की यह बात अच्छी लग रही थी। आखिर कोई भी तो ऐसा नहीं था, जिसके घर में कोई मरा न हो। अतएव सभी पक्षी उसी दिन से मिल-जुलकर वट के उस विशाल वृक्ष पर रहने लगे। सभी आपस में प्यार भरा व्यवहार करते थे, एकदूसरे की सहायता करते थे, मिल-जुलकर काम करते थे।

कल्लू कौवा जहाँ खाने-पीने की कोई चीज देखता तो काँव-काँव करके सभी को जुटा लेता। श्यामा कोयल सभी के लिए मीठे-मीठे आम तोड़ लाती। हरियल तोता दूर-दूर जाकर अनार और अमरूद ले आता। रजत कबूतर अनाज के दाने इकट्ठा करके ला देता। बस, एक श्वेताभ सारस ही ऐसा था, जो कुछ भी काम न कर पाता। वह वास्तव में बहुत बुड्ढा था। उसे कम दीखता था और काम करने में उसकी गरदन काँपती थी। शुरू-शुरू की बात है, वह और पक्षियों से कुछ भी न लेता था। कहता था कि औरों पर भार नहीं बनेगा। जो कुछ जैसे भी जुटा पाता था खा लेता था, पर एक दिन रजत कबूतर से यह देखा न गया। वह बोला—"दादाजी! क्या बच्चों का यह फर्ज नहीं कि वे बुड्ढे माँ-बाप की सेवा करें? क्या आपके बच्चे होते, तो आप इस प्रकार कष्ट पाते?"

उसकी बात बीच में ही काटकर श्वेताभ बोला—"आखिर जरूरी तो नहीं कि वे मेरी सेवा करते ही रहते।"

तैश में भरकर रजत कहने लगा—"ओह! धिक्कार है उन नालायक बच्चों को, जिनके लिए माता-पिता जीवन भर त्याग करते हैं और बड़े होने पर जो उनकी परवाह तक नहीं करते। ऐसे बच्चों से तो बच्चों का न होना ही अधिक अच्छा।"

दो पल रुककर रजत फिर कहने लगा—"पर दादाजी! हम आपके नालायक बच्चे नहीं हैं। यदि आप हमें पराया नहीं समझते, आप हमें जरा भी स्नेह करते हैं, तो आपको हमारी सेवाएँ लेनी ही पड़ेंगी।"

श्वेताभ की आँखों में खुशी के आँसू भर आए। वह सोचने लगा कि मेरे अपने भी बच्चे होते तो क्या वे भी इतना ध्यान रख पाते?

तभी वहाँ फुदककर श्यामा कोयल, चतुरी मैना, कल्लू कौवा, महादेव नीलकंठ आदि सभी पक्षी आ गए। महादेव कहने लगा—"दादाजी! अब आपको खाना खोजने के लिए कहीं भी जाने की जरूरत नहीं। यह सभी आपको थोड़ा-थोड़ा खाना लाकर देंगे। बस, आपका पेट भर जाएगा।" खुशी से श्वेताभ का कंठ गद्गद हो गया, वह एक शब्द भी उन सबके आगे बोल न पाया।

एक दिन जब सभी साथ-साथ खाना खा रहे थे, तो श्यामा कोयल बोली—"हमें ऐसा लगता है कि आजकल वट दादा बड़े ही उदास से रहते हैं।"

"हमको भी कई दिनों से ऐसा ही अनुभव हो रहा है। लगता है कि वे अपनी गंभीरता में कोई दुःख छिपाए हैं।" सभी पक्षी एक स्वर से बोले।

"चलो! चलकर उन्हीं से पूछते हैं।" हरियल तोता बोला।

खाना खाने के बाद सभी वट दादा को घेरकर बैठ गए और उनकी उदासी का कारण पूछने लगे। बड़ी देर तक वे न-न करते रहे। बहुत आग्रह करने पर बोले—"बच्चो! मैं कभी-कभी यही सोच

जाता हूँ कि एक दिन यह जगह कैसी चहल-पहल से भरी हुई थी? अब तो यहाँ पर चारों ओर धूल ही धूल उड़ती दिखलाई देती है।"

और दादाजी हम सब तो सुबह ही काम पर निकल जाते हैं। साँय-साँय करती सूनी दोपहर में आपको बहुत ही अकेलापन लगता होगा न? श्यामा कोयल बड़े भोलेपन से अपनी आँखें वट दादा पर टिकाकर बोली।

"सो तो होगा ही।" सभी पक्षी एक साथ बोले।

श्वेताभ सारस कहने लगा—"दादाजी! आप हमारे प्राणरक्षक हैं, जीवनदाता हैं। यदि हम आपका दुःख दूर न कर पाए तो धिक्कार है हमें। हम जल्दी ही आपके चारों ओर एक नई बस्ती बसा देंगे। आशीर्वाद दीजिए इस प्रयास में सफल हों।"

इसके बाद श्वेताभ ने सभी पक्षियों को कुछ समझाया। बस, फिर क्या था, दूसरे दिन से अभियान शुरू हो गया। रजत कबूतर, कल्लू कौवा, श्यामा कोयल, हरियल तोता आदि जो भी वापस लौटता उसकी चोंच में जरूर कुछ न कुछ विशेष चीज लगी होती। कभी वे कोई पका हुआ बेर ले आते, तो कभी आम, कभी अनार ले आते तो कभी उनकी चोंच में पीपल की कोई टहनी ही लगी होती। वट दादा के आस-पास की जमीन को पंजों से वे थोड़ा खोदते, फिर कभी उसमें बीज डाल देते, तो कभी कोई टहनी ही गाड़ देते। पंद्रह-बीस दिन बाद वर्षाऋतु भी आ गई और कुछ ही दिनों में बरगद के चारों ओर हरियाली उग आई। नन्हीं-नन्हीं दूब घास का गलीचा बिछ गया। कहीं नीम, कहीं पीपल, कहीं बेरिया, कहीं जामुन तो कहीं अनार के पौधे उग आए। तरह-तरह के फूलों के पौधे भी उगने लगे। कुछ ही वर्षों में वे सभी खूब बड़े-बड़े हो गए। अब तो वहाँ दूसरे पक्षी भी आकर बसने लगे। कुछ ही समय में पेड़ों पर पक्षियों की अच्छी-खासी बस्ती ही बस गई।

श्वेताभ सारस और वट दादा ने रजत कबूतर, श्यामा कोयल, महादेव नीलकंठ, हरियल तोता, कल्लू कौवा आदि सभी का

विवाह भी करा दिया। उनके नन्हें-नन्हें बच्चे अब वट दादा की कोटर में रहते थे। सारस दादा पास ही तलैया पर बैठे-बैठे सभी की रखवाली किया करते थे।

एक दिन रजत कबूतर हँसकर वट दादा से बोला—"क्यों दादाजी! अब तो दोपहर में आपको सूनापन नहीं लगता होगा न। बतियाने को अब तो आपके चारों ओर ढेर सारे पेड़-पौधे हैं।"

वट दादा भी मुस्कराकर बोले—"और भाई तुम्हारा भी खूब मन लग गया है न! अब तो मेरी डाल में गरदन फँसाने की कोशिश नहीं करोगे न।"

दादा और रजत की चुहलबाजी से सभी पक्षी मुस्करा उठे। उन्हें सहसा ही तूफान वाला दिन याद आ गया। वे मन ही मन सोच रहे थे—"जब हम एकदूसरे को पराया समझ लेते हैं, तो दुःख ही दुःख पाते हैं। सबको अपना आत्मीय बनाकर चलने में ही जीवन का सच्चा सुख है। धैर्य और विवेक से मिल-जुलकर काम करने से बुरी से बुरी स्थिति भी जल्दी ही दूर हो जाती है।"



तोते का निर्णय

एक तोता एक दिन पेड़ की ऊँची डाल पर बैठा था। वह अभी-अभी एक कच्चा अनार तोड़कर लाया था। बड़ा स्वाद लेकर वह उसे खा रहा था। तभी उसने देखा कि सामने वाले गुलाब के एक फूल पर एक तितली और एक मधुमक्खी आ बैठीं, दोनों साथ-साथ आईं थीं। दोनों ही उसका रस पीना चाहती थीं। वे आपस में झगड़ने लगीं। तितली बोली—"अरी! पहले मैं आई हूँ, इस फूल पर मेरा अधिकार है। तू और कहीं चली जा।"

मधुमक्खी कहने लगी—"हटो भी! तुमसे पहले मैं आई हूँ। चलो तुम्हीं भागो यहाँ से।"

दोनों काफी देर तक आपस में इसी प्रकार तू-तू, मैं-मैं करती रहीं। अँधेरा घिरने लगा था। उन्हें घर भी जल्दी लौटना था। दोनों में से कोई भी न तो उस फूल का रस पी पा रही थी, न उसे छोड़ पा रही थी। सहसा उनकी निगाह डाल पर बैठे तोते पर पड़ी। उन्होंने तोते को पुकारा—"तोता भाई, तोता भाई! कृपया इधर आइए। आप हमारे झगड़े का फैसला कर दीजिए। हम आपके बड़े आभारी रहेंगे।"

तोता फुदककर अब गुलाब के पौधे के पास आ गया था। "कहिए! आपका क्या भला कर सकता हूँ?" वह पूछने लगा।

दोनों ने अपनी समस्या उसके सामने रखी। तोता कहने लगा— "मैंने आप दोनों को ही आते देखा था। दोनों ही साथ-साथ आईं थीं। ऐसा करो कि आप दोनों ही आधे-आधे गुलाब का रस पी लीजिए।"

"ओह! यह तो संभव नहीं है। यह भला कौन सा न्याय हुआ? तोते भाई! तुम निस्संकोच दोनों में से किसी एक के पक्ष में अपना निर्णय सुना दो। हम बिना झगड़ा किए उसे मान लेंगे।" अपनी लंबी सूँड़ घुमाते हुए तितली बोली।

तोता कहने लगा—"बहनो! मिल-जुलकर रहो। साथ-साथ खाओ, साथ-साथ प्रेम से बोलो, साथ-साथ रहो। एकदूसरे को सहयोग करो। किसी के साथ मिलकर न रहने वाले, अलग-अलग चलने वाले क्या भला अच्छे कहे जा सकते हैं? क्या वे कभी दूसरों का सम्मान पा सकते हैं?"

अब तोते ने दो पल सोचा। फिर कहने लगा—"सुनो! सुनाता हूँ तुम्हें अपना निर्णय। बुरा न मानना, ध्यान से सुनना।"

मधुमक्खी और तितली तोते के पास खिसक आईं। बड़े ध्यान से वे उसकी बातें सुनने लगीं।

"इस फूल पर मधुमक्खी का अधिकार है।" तोता कहने लगा।

यह सुनकर मधुमक्खी प्रसन्नता से भर उठी, पर तितली बड़ी ही उदास हो गई। वह अपनी निराश दृष्टि तोते पर जमाकर पूछने लगी—"ऐसा क्यों कहा है, तोता भाई? मैंने आखिर क्या अपराध किया है?"

तोता दो पल रुका फिर अपने पंजे में पंजा उलझाते हुए स्थिर स्वर में बोला—"देखो! जो औरों को देता है, वही पाने का सच्चा अधिकारी है। तुम दोनों ही फूलों का रस पीती हो। तुम उसे केवल अपने काम में ले लेती हो, पर मधुमक्खी उसे शहद के रूप में बदलकर दूसरों को दे देती है। फूलों के रस को और भी उपयोगी और गुणकारी बना देती है। वह स्वयं मारी जाती है, पर फिर भी शहद बनाना नहीं छोड़ती। परोपकार में लगे हुए महान व्यक्ति, स्वयं कष्ट पाकर भी कल्याण करते हैं। ऐसे व्यक्ति स्वयं भी दुखी नहीं रहते। अनायास ही वे बहुत सी सुविधा संपत्ति पा लेते हैं.......।"

तोता की बात सुनकर तितली का मुँह लटक गया। वह बिना एक शब्द भी बोले चुपचाप वहाँ से उड़ गई।

"धन्यवाद तोता भाई।" मधुमक्खी ने हँसते हुए कहा और फूल पर बैठकर आराम से रस पीने लगी। वह मन ही मन सोचती जा रही थी—"उस जीवन से लाभ क्या जो दूसरों का उपकार न कर सके, उनके कुछ काम न आ सके।"



कोयल का बच्चा

एक थी कौवी। नाम था उसका भीमा। सुनसान जंगल में बरगद के एक घने पेड़ पर उसका घोंसला था। घोंसले में चार छोटे-छोटे बच्चे थे। वे अभी कुछ दिन पहले ही अंडों से निकले थे। भीमा दिन-रात उन बच्चों की सेवा करती। उसका पति कन्नू बड़ा ही आलसी था। वह सारे दिन इधर-उधर यों ही घूमता रहता। मस्त घोंसले में पड़ा रहता, उसे न बच्चों की चिंता थी और न रात-दिन एक करके बच्चे पालती हुई पत्नी की। सारे दिन बच्चों के लिए भोजन तलाशती भीमा बहुत अधिक थक जाती थी। साँझ घिरने पर वह घोंसले में लौटती तो तुरंत ही थकान के कारण उसकी आँख लग जाती।

कुछ दिन तक यही क्रम चलता रहा। बार-बार की भाग-दौड़ के कारण भीमा अधिक देर तक बच्चों के पास भी ठीक से बैठ नहीं पाती थी। उसे लगा कि घोंसले में पलते हुए सभी बच्चे उसके नहीं हैं। उसने बड़े ध्यान से उन बच्चों की जाँच-पड़ताल की। तब यह भेद खुला कि एक बच्चा उसका नहीं है। कोई कोयल भीमा की आँख बचाकर उसके घोंसले में अपना बच्चा रख गई थी। बेचारी भीमा उसे अपना बच्चा समझकर इतने दिनों से पाल रही थी।

भीमा को बड़ा गुस्सा आया। क्रोध से उसकी आँख लाल-लाल हो उठीं। काँव-काँव करके वह जोरों से चीखी। पलभर में उसका पति कन्नू वहाँ आ गया। उसके साथ और भी दो-चार कौवे थे। भीमा की बात सुनकर वे सभी गुस्से में अपने पंख फड़फड़ाने लगे। उनके गुस्से का कारण यह भी था कि ऐसी घटना पहली बार

नहीं घटी थी। अकसर ही यह होता था कि कोयल कभी किसी कोवे के घोंसले में अपना अंडा रख जाती, तो कभी किसी के में। वे बेचारे उसे अपना समझकर बड़े लाड़-प्यार से पालते। जैसे ही कोयल का बच्चा कुछ बड़ा होता तो फुर्र से वहाँ से उड़ जाता। यही नहीं, इस पर भी कोयलें हमेशा कौवों की बुराई ही करती रहती थीं। वे अपनी मीठी-मीठी चापलूसी भरी बातों से मनुष्यों का मन मोह लेतीं। फल यह होता कि मनुष्य कोयलों की प्रशंसा करते, कौवों की निंदा करते, उन्हें देखते ही हुश-हुश करके उड़ाने लगते।

भीमा ने कौवों से एक लंबी रस्सी लाने को कहा। वे जल्दी से गए और वट की लंबी सी जटा ले आए। भीमा और दूसरे कौवों ने उससे कोयल के बच्चे के पंजे कसकर बाँध दिए, जिससे कि वह घोंसला छोड़कर उड़ न जाए। भीमा मन ही मन कह रही थी—"तुम मेरे बच्चे बनकर पले हो तो मेरे ही बच्चे बनकर रहोगे।"

जल्दी ही सारे बच्चे बड़े होने लगे। भीमा के तीनों बच्चे थोड़ा-थोड़ा उड़ना भी सीख गए थे। वे कभी-कभी घोंसले से बाहर भी थोड़ा-बहुत घूम आते थे, पर कोयल के बच्चे को भीमा कहीं न जाने देती थी। उसके पैरों में बँधी रस्सी भी अब अपने घोंसले के बाहर बरगद की टहनी पर बाँध दी थी।

भीमा सभी बच्चों को बड़े प्यार से रखती। वह उन्हें नई-नई बातें सिखाती। बात-चीत करना सिखाती, कौवे समाज का रहन-सहन सिखाती, अनेक गाने सिखाती। कोयल का बच्चा भी साथ रहकर सभी कुछ सीख रहा था। थोड़े ही दिनों में वह कौवे के बच्चों की तरह गाने लगा और वैसे ही रहने लगा। उसे छूट नहीं थी तो केवल आसमान में स्वच्छंद रूप से उड़ने की। भीमा बरगद की टहनी से बँधी रस्सी ढीली कर देती और कोयल का बच्चा पंजे बँधे उड़ने का अभ्यास करता।

एक दिन अचानक ही हवा के तेज झोंके से बरगद की टहनी टूटी और रस्सी खुल गई। कोयल का बच्चा बेतहाशा वहाँ से उड़ा। उसके पंजे रस्सी में बँधे हुए थे। रस्सी का छोर लटक रहा था, पर वह उड़ता ही गया, उड़ता ही गया। बहुत दूर आम के बाग में जाकर ही उसने चैन की सांस ली।

कोयल के बच्चे ने जोर-जोर से सहायता के लिए पुकार मचाई। उसे पूरा विश्वास था कि जल्दी ही सारी कोयलें दौड़ी आएँगी। वे जल्दी से उसके पंजों में बँधी रस्सी खोल देंगी। उसकी आवाज सुनकर अनेक कोयलें आ गईं थीं, पर उसकी सहायता करना तो दूर रहा, वे तो उसे चोंच मार-मारकर वहाँ से भगाने लगीं। वे आपस में कह रहीं थीं कि देखो यह कौवे का बच्चा हमारा सा रूप रखकर हमें धोखा देने आया है। कोयल के बच्चे ने बहुतेरा समझाया कि वह उनकी जाति का है, पर कोयलें कह रही थीं—"तुम रूप बदलकर हमें धोखा दे सकते हो, पर आवाज को कैसे बदलोगे ? तुम्हारी आवाज ही तुम्हारी सचाई कह रही है कि तुम कोयल नहीं कौवे हो।"

कोयल के बच्चे की कौवों के समाज में जाने की हिम्मत न हुई। वहाँ तो रोज ही कौवे भीमा को भड़काते थे कि वह उसे मार डाले। वह अपना दुश्मन क्यों पाल रही है? यह भीमा की ही उदारता थी जो उसे प्यार से रखती थी।

इस प्रकार कोयल का बच्चा न कौवों के साथ रह सकता था और न कोयलों के। उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। वह आम के बाग को छोड़कर तेजी से उड़ चला। उड़ते-उड़ते वह जंगल में आया और हाँफते हुए नदी के किनारे आकर गिर पड़ा। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? यह सोचकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। अपने दुःख में उसे यह ध्यान भी न रहा कि एक कोयल बहुत देर से उसका पीछा कर रही है। अचानक ही उसने सुना कि कोई

कोयल सामने बैठी हुई कह रही है—"किसी भी स्थिति से डरकर भागना भी कायरता है। प्रत्येक स्थिति का धैर्य और साहस से सामना करो, तभी जीवन में सफल हो पाओगे।"

कोयल के बच्चे को बड़ा गुस्सा आया। वह तुनककर जोर से चीखा—"कौन हो तुम? भागो यहाँ से।"

"बेटा! मैं तुम्हारी माँ हूँ।" कोयल ने उसके सिर पर पंजा फिराते हुए प्यार से कहा।

"मेरा कोई भी माँ-वाँ नहीं।" कहकर कोयल के बच्चे ने मुँह फिरा लिया। "मैं अनाथ हूँ, भीमा कौवी ने मुझे पाला है।" वह कह रहा था।

उसकी बात सुनकर कोयल की आँखों में आँसू भर आए। वह रुँधे गले से बोली—"मेरे बेटे विश्वास रख! मैं ही तेरी माँ हूँ। हाय, तुझे ठीक से पाल-पोस न सकती थी, तो मैंने तुझे जन्म ही क्यों दिया? मुझे अपनी करनी का, भीमा को धोखा देने का फल मिल गया है। मेरे लाल! मेरा मन आज तुझे इस स्थिति में देखकर कितना दुखी हो रहा है, इसे तू समझ न पाएगा। मेरी गलती का फल तुझको मिले, यह कहाँ का न्याय है? तू मुझे अपनी गलती सुधारने का मौका देगा न मेरे बच्चे! यह कहकर कोयल ने दोनों पंजों से अपने बेटे को पकड़कर हृदय से ममत्व-भाव होकर लगा लिया। माँ की ममता पाकर बच्चे की आँखों से टप-टप आँसू बहने लगे।"

फिर कोयल ने अपनी चोंच से बार-बार कोशिश करके उसके पंजों में बँधी रस्सी को अलग कर दिया। वह उसे लेकर जंगल के सुनसान भाग में चली गई। वहीं एक पेड़ पर दोनों माँ-बेटों ने डेरा डाला। बहुत समय तक वहाँ रहकर कोयल अपने बेटे को तरह-तरह की शिक्षा देती रही। सिखाने से भी दोगुना समय और शक्ति इस बात में लगा रही थी कि बेटे ने जो गलत सीख रखा था, वह उसे भूल जाए। वह सोच रही थी—"काश ! पहले ही मैं इसे सही

दिशा दे देती तो क्यों दोनों इतनी परेशानी भुगतते? गलत सीखने से तो न सीखना ही अच्छा है।''

सच्चे मन से जो काम किया जाता है, उसे अंत में सफलता मिलती ही है। कोयल भी थोड़े दिनों में बच्चे को सिखाने में सफल हो गई। जब उसकी शिक्षा पूरी हो गई, तो वह एक दिन बच्चे से बोली—''बेटे ! अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गई है। अब तुम गुणी बन गए हो। शरीर और रंग-रूप से नहीं, अच्छे स्वभाव और गुणों से ही कोई सच्चा आदर पा सकता है। जाओ! कोयलें तुम्हारा स्वागत करेंगी। मेरा कर्त्तव्य पूरा हो चुका है। विदा.........।''

''माँ! मुझे अंतिम उपदेश तो दे दो।'' माँ के पैर छूते हुए कोयल का बच्चा बोला।

कोयल बोली—''बेटा ! अंत में, मैं तुमसे बस, इतना ही कहूँगी कि सदैव परिश्रम और ईमानदारी से काम करना। दूसरों को धोखा देने से हो सकता है कि उस समय तुम्हें अपना लाभ दिखाई दे, पर यह लाभ थोड़े समय का होता है। ऐसा करने वाले को अंत में पछताना ही पड़ता है।''

''माँ तुम्हारी बात मैं सदैव ध्यान रखूँगा।'' कोयल के बच्चे ने माँ को प्यार और आदर की दृष्टि से देखते हुए कहा। फिर उसने पंख फड़फड़ाए और प्रसन्न मन से जीवन की लंबी यात्रा पर निकल गया।



वृक्षों की बातें

कुमायूँ के जंगल में साल, सागौन, देवदारु आदि के बहुत से वृक्ष थे। अपनी घनी बस्ती में वे वृक्ष बोलते-बतियाते रहते थे। सभी सुख से रहते थे कि अचानक एक दिन उन्होंने पाया कि उनका जीवन खतरे में पड़ गया है। आठ-दस आदमी सबेरे से ही कुल्हाड़ी लेकर उनके अंगों पर आघात करते, फिर उन्हें जड़ में से काटकर गिरा डालते। इसी तरह से उन्होंने सारे के सारे वृक्ष काट-काटकर गिरा दिए। रह गए बस, दो साल, दो सागौन, एक वट और एक देवदारु का वृक्ष। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर स्थित ये वृक्ष अपने भाइयों की मृत्यु पर शोक मनाते रहते। ये न कुछ खाते और न पीते। परिणाम यह हुआ कि वे बहुत जल्दी ही दुर्बल हो गए और उनके पत्ते भी पीले पड़ गए।

एक दिन साल-वृक्ष वट से पूछने लगा—"दादा! मैंने तो यह सुना था कि काटने पर प्रतिबंध है, पर अब तो इसका उलटा ही हो रहा है।"

वट दादा अपनी जटाएँ हिलाकर बोले—"हाँ बेटा! कानून से तो हमारा काटना सख्त मना है, पर जो अधिकारी हैं, वे मनमानी करते हैं। खुद पैसा कमाने के लिए हमें कटवा देते हैं।"

"वह जो बड़ी-बड़ी मूँछों वाला, लाल-लाल आँखों वाला आदमी था, वही हमें कटवा रहा था न दादा।" सागौन ने पेड़ से पूछा।

"हाँ ! तभी तो एक देवदारु को इतना गुस्सा आया था कि वह कटते-कटते लड़खड़ाकर जोर से उसके ऊपर ही गिर गया था।

जरा-सा बच गया बच्चू, नहीं तो उस दिन भुरता ही बन गया होता उसका।'' साल ने उत्तर दिया।

''ये मनुष्य भी अपने स्वार्थ के लिए देश के साथ कैसी गद्दारी किया करते हैं...... न जाने कब सीखेंगे ये ईमानदारी से काम करना।'' सागौन बोला।

''जिस देश के नागरिक ईमानदारी से काम नहीं करते, अपने स्वार्थ को देश के हित से अधिक महत्त्व देते हैं, वह देश अवनति के गड्ढे में गिरता ही चला जाता है।'' वट दादा कुछ गंभीर होकर कह रहे थे।

''हमें काटने का कुफल भी जल्दी ही इन्हें भोगना पड़ेगा।'' देवदारु गुस्से में भरकर बोला।

''वह कैसे?'' नन्हें साल ने पूछा।

''अरे! क्या तुम नहीं जानते? हमारे कारण ही तो बरसात होती है। हमारे कारण ही तो ये लोग जीवित रहते हैं।'' देवदारु का वृक्ष बोला।

''सो कैसे दादा?'' साल पूछने लगा।

''अरे बेटा! कहाँ तक गिनाऊँ मैं कि हम इन मनुष्यों का क्या-क्या उपकार करते हैं? संक्षेप में सुनो, सुनाता हूँ। हम दूषित वायु जिसे ये कार्बन डाई-ऑक्साइड कहते हैं? उसे हम अंदर खींच लेते हैं और बदले में उन्हें शुद्ध वायु ऑक्सीजन देते हैं। इससे ही मनुष्य जीवित रहते हैं। हम सूरज की रोशनी पीते हैं और उसे तरह-तरह के खाद्य के रूप में बदल देते हैं। हमारी प्रकाश-संश्लेषण क्रिया के जादू से ही उन्हें अन्न, दाल, फल, चीनी आदि खाद्य पदार्थ मिलते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि विविध खाद्य पदार्थों के लिए वर्षा की आवश्यकता होती है। वर्षा में भी हम सहायक हैं।''

''हाँ दादा! यह तो मैं भी जानता हूँ कि हमारी पत्तियों से सूरज की किरणें भाप खींचती हैं और इससे ही वर्षा होती है।'' साल कहने लगा।

"जब हमें ये मनुष्य काट डालेंगे तो वर्षा कहाँ से होगी? तुम्हीं बताओ? और जब वर्षा नहीं होगी, तो क्या ये मनुष्य भूखों न मरेंगे?" देवदारु कहने लगा।

और देवदारु की बात सच हुई। अगले वर्ष ऐसा सूखा पड़ा कि फसल ही न हो पाई। अमीरों ने तो अपने-अपने घर और गोदाम भर लिए थे, पर साधारण जनता अन्न के एक दाने-दाने के लिए तरसती रही।

एक दिन नन्हें साल ने देखा कि बहुत से मनुष्य उनके आस-पास इकट्ठे हो गए हैं। उनके सिर पर हरे-भरे गट्ठर थे। उनके हाथों में औजार थे। वे थोड़ी-थोड़ी दूर पर जमीन खोद रहे थे। हे भगवान! अब न जाने क्या मुसीबत आने वाली है? यह सोचकर साल वृक्ष काँप उठा। वह डर से चीखा—"दादा-दादा! देखो यह क्या हो रहा है?"

देवदारु ने उसे पुचकारते हुए कहा—"डरो नहीं बेटा! आज डरने की कोई बात नहीं है। आज तो तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि हमारे आस-पास ये मनुष्य अनेक पौधे लगाने आए हैं। ठोकर खाकर अक्ल आ गई है अब उन्हें। कुछ ही समय में तुम देखोगे कि हमारी बस्ती खूब बढ़ गई है........।"

दादा की बात सुनकर न केवल साल ने अपितु सभी वृक्षों ने जोर-जोर से पत्ते हिलाकर तालियाँ बजाईं। वे सभी खुशी से झूमने और गाने लगे। आज तो उनकी खुशी की सीमा न थी।



अपकार का बदला

शांतिवन में अनेक पक्षी रहा करते थे। कहीं सेमल के एक पेड़ पर घोंसला बनाकर चुनियाँ नाम की एक चिड़िया रहा करती थी। एक दिन दोपहर के समय चुनियाँ फुदक-फुदककर गाना गा रही थी। उसकी सहेलियाँ भोजन की तलाश में गई हुई थीं। सुबह चुनियाँ की तबीअत बहुत खराब हो गई थी, इसलिए वह उनके साथ नहीं जा पाई थी। अब उसका जी जरा हलका हुआ था, इसलिए वह घास में आकर गाने लगी थी।

सहसा ही हवा का तेज झोंका आया। चुनियाँ की आँख में एक तिनका पड़ गया। वह दरद से घबरा गई। उसने जोर से आँख मली, जल्दी-जल्दी उसे खोला-बंद किया, पर तिनका फिर भी न निकला। चुनियाँ बड़ी परेशान हो गई। तभी उसने देखा कि सामने से मयूरजी चले आ रहे हैं।

चुनियाँ ने कहा—"मयूर भाई-मयूर भाई! मेरी आँख में कुछ पड़ गया है। कृपया इसे जल्दी से निकालिए नहीं तो मैं अंधी हो जाऊँगी।"

मयूर ने उसकी बात अनसुनी कर दी। उपेक्षा से चुनियाँ पर दृष्टि डालकर आगे बढ़ गया। रास्ते में वह बड़बड़ा रहा था—"हुँ-हुँ! मैं निकालूँगा उस कलूटी-बदसूरत की आँख का तिनका। उसे अपनी औकात देखकर ही बात करनी चाहिए।"

मयूर वास्तव में बड़ा घमंडी था। वह छोटे-मोटे असुंदर पक्षियों से तो बात ही नहीं करता था। वह तोता, नीलकंठ, सारस आदि कुछ पक्षियों से ही मिलता-जुलता रहता था। यही कारण था कि

चुनियाँ से बात करना और उसकी सहायता करना मयूर को अपमान लगता था।

चुनियाँ बेचारी बड़ी परेशान हुई। उसकी आँख से लगातार पानी बह रहा था। शाम तक वह खूब फैल गई और लाल हो गई। जब उसकी सहेलियाँ वापस लौटीं, तब कहीं जाकर उन्होंने तिनका निकाला। उस आँख से उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

चिड़ियों को मयूर की बात सुनकर बड़ा गुस्सा आया। रन्नो अपनी आँखें लाल करके बोली—"न जाने किस बात का घमंड करते हैं। भगवान की दृष्टि में सभी प्राणी बराबर हैं। उनके लिए न कोई छोटा है और न बड़ा।"

मानी चिड़िया कह रही थी—"घमंडी और अहंकारी प्राणी को भगवान अवश्य दंड देता है। मयूर को भी एक न एक दिन बड़ा अच्छा सबक मिलेगा।"

चुनियाँ बोली—"जो मुसीबत पड़ने पर दूसरों की सहायता नहीं करता और मुँह फिराकर चला आता है, उससे बड़ा नीच और क्षुद्र दूसरा कोई नहीं है।"

सभी चिड़ियों ने चुनियाँ को ढाँढ़स बँधाया। उन्होंने तरह-तरह की जड़ी-बूटी लाकर उसकी आँख में लगाई। चुनियाँ की आँख का दरद थोड़ा कम हो गया, वह पूरी तरह ठीक नहीं हो पा रही थी, इसलिए सभी चिड़यों ने चुनियाँ से कह दिया था कि वह अब कुछ दिन तक खाना ढूँढ़ने न जाए। वे सभी उसके लिए खाना ला दिया करेंगी।

अब चुनियाँ चार-पाँच दिनों से पेड़ पर ही बैठी रहती। बैठी-बैठी वह भगवान के भजन गाया करती। दुःख-मुसीबत में ईश्वर को स्मरण करने से मन को बड़ा धीरज मिलता है और दुःख सहने की शक्ति बढ़ती है।

एक दिन आकाश पर बादल छाए थे। हलकी-हलकी बूँदाबाँदी हो रही थी। तभी चुनियाँ ने देखा कि सामने मयूर और मयूरी चले

आ रहे हैं। बादलों को देखकर वे बड़े प्रसन्न हो रहे थे। जोर-जोर से केंआ-केंआ कहकर अपनी खुशी प्रकट कर रहे थे। कुछ ही देर बाद वे नाचने लगे और सुध-बुध खो बैठे।

"वाह! क्या सुंदर नाच है?" चुनियाँ के मुँह से निकला।

तभी चुनियाँ ने देखा कि कुछ मनुष्य चुपके-चुपके पीछे से मयूर की ओर बढ़ रहे हैं। चुनियाँ को पता था कि मनुष्य मोरों को पकड़ लेते हैं। उनके पंखों को निर्दयतापूर्वक नोंच लेते हैं, उन्हें बंदी बना लेते हैं। पलभर में ही उसके मन में यह बात कौंध गई कि ये लोग अब मयूर को पकड़ ले जाएँगे। मयूर नाच में बेसुध हो रहा था, उसे यह सब कुछ पता ही न था।

"अब खुद पर मुसीबत आएगी, तब पता चलेगा बच्चू। सारी सुंदरता छिन जाएगी, जब तुम्हारे पंख नोंचे जाएँगे। सारा का सारा घमंड चकनाचूर हो जाएगा।" चुनियाँ मन ही मन बोली।

पर दूसरे ही पल इसकी कल्पना से ही वह काँप उठी। उसके मन ने कहा—"मुसीबत में पड़े हुए की सहायता करनी चाहिए। दूसरा तुम्हारे साथ बुरा करे तो किया करे, तुम अपनी भलाई क्यों छोड़ती हो?"

सहेली की बातें रह-रहकर चुनियाँ के कानों में गूँज रही थीं—"जो मुसीबत पर दूसरों की सहायता नहीं करता और मुँह फिराकर चला जाता है, उससे बड़ा नीच और क्षुद्र दूसरा कोई नहीं।"

मयूर और मनुष्य के बीच अब बस चार-पाँच कदम की ही दूरी रह गई थी। तभी चुनियाँ जोरों से चीखी—"मयूर भाई! बचो भागो, तुम्हारे पीछे कुछ मनुष्य खड़े हैं। ये तुम्हें पकड़ने ही वाले हैं।"

मयूर का नाच सहसा रुक गया। उसने तुरंत पीछे मुड़कर देखा। मयूर और मयूरी दोनों भयभीत होकर तेजी से भागे और पास ही झाड़ियों में गायब हो गए। वे मनुष्य हाथ मलते हुए वहाँ से वापस चले गए।

बहुत देर बाद मयूर झाड़ियों में से निकला और बोला— "चुनियाँ बहन! मैं तुम्हारा यह उपकार नहीं भूलूँगा। तुम चाहती तो चुप रहतीं, पर यह तुम्हारी महानता है कि तुमने अपना बुरा करने वाले का भी भला किया। उपकार करने वाले का भला सभी करते हैं, किंतु अपकार करने वाले की भलाई कुछ महान ही कर पाते हैं। धन्य है ऐसे व्यक्ति जो दुश्मन का मन भी प्यार और सहानुभूति से जीत लेते हैं, उसे अपना बना लेते हैं। आज तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं......। छोटी होकर भी तुमने मुझे बड़ी शिक्षा दे दी है।"

तभी शाम होने लगी। एक-एक करके सारी चिड़ियाँ सेमल के पेड़ पर आने लगीं। मयूर के मुँह से उन्होंने सारी बात सुनी, तो चुनियाँ के प्रति उनका मन बड़ी श्रद्धा से भर उठा।



सुखी परिवार

नर्मदा नदी के किनारे घना जंगल था। वहाँ वीरा नाम की एक शेरनी एक माँद में रहती थी। एक बार किसी शिकारी ने उस पर तीर चलाया। वीरा के पंजे में जाकर लगा। वीरा के बार-बार कोशिश करने पर भी तीर निकल नहीं पा रहा था।

सावी नाम की एक जंगली सुअरिया झाड़ियों में छिपी हुई यह सब देख रही थी। उसके मन में आया कि जाकर वीरा का तीर निकाल दे। उसकी सहायता करे, पर उस डर से कि वीरा कहीं उस पर ही आक्रमण न कर दे। सावी चुपचाप बैठी रही।

वीरा दरद से बहुत व्याकुल हो रही थी। वह कराहती हुई बोली—"अरे! यहाँ कोई आस-पास हो तो मेरी सहायता करे।"

झाड़ी में से सावी बोली—"सहायता तो कर सकती हूँ, पर डर है कि कहीं मुझे ही न खा जाओ।"

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि जीवनभर तुम्हारी मित्र बनी रहूँगी।" वीरा ने कहा और दरद से आँखें मूँद लीं।

यह सुनकर सावी जल्दी से झाड़ी से निकली। उसने एक ही झटके में वीरा का तीर निकाल दिया। सावी ने उस जगह को कसकर दबाया। खून निकलना जल्दी ही बंद हो गया। तब नदी से पानी ला-लाकर सावी ने वीरा का घाव धोया। सावी की उपचर्या से जल्दी ही घाव भर गया।

जिसकी हम सेवा करते हैं, दुःख-मुसीबत में सहायता करते हैं, उसका मन जीत लेते हैं। सावी ने भी अपनी सेवा से वीरा के मन को जीत लिया। वे दोनों पक्की सहेलियाँ बन गईं। योग्य और

समर्थ से मित्रता सदैव हितकारी ही होती है। वीरा सभी का उपकार ही करती रहती। अपने शिकार में से वह सदैव सावी को भी हिस्सा देती। सबको पता था कि सावी वीरा की सहेली है। अतएव किसी भी जानवर की हिम्मत न थी कि सावी को तंग कर सके।

संयोग की बात है कि कुछ समय बाद वीरा और सावी दोनों के एक साथ बच्चे पैदा हुए। वीरा के दो बच्चे पैदा हुए और सावी के आठ। सावी अपना बड़ा परिवार देखकर फूली न समाती थी। धीरे-धीरे सावी को अपने बड़े परिवार पर घमंड होने लगा। वह सोचने लगी कि मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ? एक साथ आठ-आठ बच्चे मेरी सेवा करेंगे। सावी देखती कि वीरा बस, अपने दो बच्चों को लेकर बैठी है। उसे वीरा पर तरस आता। सावी सोचती, काश! वीरा के भी खूब सारे बच्चे होते।

एक दिन वीरा का विचार इससे भिन्न था। वह बोली—''बच्चों की संख्या अधिक होने से क्या होता है? बच्चे चाहे एक-दो ही हों, पर हों योग्य। अधिक बच्चे होने से तो माँ-बाप को कोई सुख नहीं मिल सकता और उलटे उनके पालन-पोषण में कठिनाई ही होती है।''

सावी को वीरा की बात बहुत बुरी लगी। वह सोचने लगी कि वीरा उस पर ही व्यंग्य कर रही है। अतएव सावी क्रोध से बोली—''अरी! तू मेरे बच्चों को देख-देखकर चिढ़ती है। खुद तो तू कुल दो बच्चों को ही जन्म दे पाई है, इसलिए मेरा भरा-पूरा परिवार देख नहीं सकती।''

सावी दाँत निकाल-निकालकर चीख रही थी। उसे समझाते हुए वीरा बोली—''सावी बहन! क्रोध न करो, कुछ समझदारी से बोलो। क्रोध समझदारी को घर से बाहर निकाल देता है। क्रोध करने से, योग्य से योग्य भी मूर्ख बन जाता है।''

वीरा की बात सुनकर सावी और भी भड़क उठी। वह जोरों से घुर्राने लगी। कहने लगी—''ओह! तुम मुझे रोज मांस लाकर दे

देती हो न, इसलिए मुझ पर एहसान झाड़ रही हो। ऐसा पता होता तो तुम्हारा दिया छूती तक नहीं। मैं अपने मरे बच्चों का मुँह देखूँ, यदि अब कभी तुम्हारा दिया खाऊँ तो।"

वीरा समझ गई कि इस समय सावी से कुछ भी कहना-सुनना बेकार है। गुस्सा करने वाले को यह ज्ञान नहीं होता कि क्या उचित है और क्या अनुचित? अतएव वीरा अपने दोनों बच्चों को लेकर चुपचाप वहाँ से चली गई।

उसी रात को जब वीरा बच्चों को लेकर नदी पर पानी पीने जा रही थी, तो कुछ शिकारी उसके पीछे पड़ गए। वे उसका तथा उसके बच्चों का शिकार करना चाहते थे। वीरा उनकी निगाह से जैसे-तैसे बचती हुई पास के जंगल में पहुँची। वीरा ने निश्चय किया कि जब तक बच्चे बड़े न हो जाएँगे, वह इसी जंगल में ही रहेगी। पहले वाले जंगल में तो शिकारियों का लगातार सदैव डर ही बना रहता है।

कुछ समय में वीरा के बच्चे बड़े हो गए। वीरा ने उन्हें बहुत ही निपुण बना दिया था। वे इतने योग्य, विनयशील और अनुशासन में रहने वाले थे कि जो भी उनसे मिलता, तो उनका मन प्रसन्न हो जाता था।

एक दिन वीरा मन में सोचने लगी—"अब तो मुझे शिकारियों का डर नहीं रहा। अब मुझे पहले वाले जंगल में चलना चाहिए। मेरे सभी संगी-साथी वहीं हैं। वे मेरी चिंता करते होंगे।" यह सोचकर वीरा अपने बच्चों को लेकर उस जंगल की ओर चल पड़ी। थोड़ी ही देर में वे वहाँ पहुँच गए। वीरा को बच्चों सहित राजी-खुशी आया देखकर सभी जानवर बड़े प्रसन्न हुए।

वीरा जब अपनी पुरानी माँद के पास पहुँची तो चौंक पड़ी। वहाँ पर सावी लेटी हुई थी, वह इतनी दुर्बल हो गई थी कि पहचानी नहीं जाती थी। उसके आठों बच्चे भी सूख-सूखकर हड्डी का ढाँचा हो रहे थे। वे सभी उसके थनों को पकड़-पकड़कर जोरों से

चूस रहे थे। एकदूसरे को धक्का दे रहे थे। उनकी दूध पीने की आदत अभी तक छूटी न थी।

उन्हें देखकर वीरा एकदम ठिठक गई। सावी और उसके बच्चों की दुर्दशा देखकर उसका मन करुणा से भर गया था। उसके मुँह से बस, इतना ही निकला—"सावी बहन! यह क्या हुआ तुम्हें?"

वीरा को देखकर सावी की आँखों में आँसू भर आए। वह बोली—"वीरा बहन! मुझे माफ कर दो। मैंने बिना बात के ही तुमसे भला-बुरा कहा था। मेरी बात तुम्हें इतनी बुरी लगी थी कि तुम मुझे छोड़कर ही चली गईं।"

धत पगली! ऐसा नहीं कहते। तेरी बात का भला क्यों बुरा मानने लगी? वीरा ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा। फिर उसने बताया कि किस प्रकार उसे अचानक इस जंगल से जाना पड़ा था।

तब तक वीरा के बच्चे भी वहाँ आ गए थे। उन्होंने अपनी माँ के साथ बातें करते देखा, वे वहीं आकर खड़े हो गए। "नमस्ते मौसी!" दोनों बच्चों ने हाथ जोड़कर-झुककर कहा।

सावी ने बहुत ही प्रसन्न होकर उन्हें बार-बार आशीर्वाद दिया और कहने लगी—"ओह! तुम्हारे बच्चे कितने सुशील और सभ्य हैं।"

"बताओ तो तुम्हारी यह स्थिति क्यों हुई? तुम कब से बीमार हो?" वीरा बार-बार पूछने लगी।

सावी ने बताया कि जब तक वीरा वहाँ रही, उन्हें खाने-पीने की तकलीफ नहीं रही। सावी और उसके बच्चों को बिना अधिक मेहनत किए ही खाना मिल जाता था। सावी ने कभी यह बात गंभीरता से सोची तक न थी। अतएव वीरा के चले जाने पर सावी को भोजन की तलाश में जाना पड़ा। आठ बच्चों और अपने लिए वह खाना ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक जाती थी। उसका शिकार करने का अभ्यास भी छूट चुका था। एक दिन वह शिकारियों के चंगुल में

फँस गई। उसके पेट में गोली लगी। जैसे-तैसे वह प्राण बचाकर भागी। उसी दिन से वह बीमार है। अब वह अपने और बच्चों के लिए खाना भी बड़ी कठिनाई से ही ला पाती है।

"पर सावी बहन! तुम्हारे बच्चे तो अब बड़े हो गए हैं। इन्हें खाना खोजने क्यों नहीं भेजती?" वीरा ने पूछा।

"क्या बताऊँ वीरा बहन! ये बच्चे ही निकम्मे हैं। कुछ काम करना नहीं चाहते। लाकर यदि दे दूँ तो खा लेंगे, नहीं तो मेरा दूध ही चूसते रहेंगे। इतने बड़े हो गए, पर दूध पीने की इनकी आदत नहीं छूटी। मैंने क्यों नहीं बचपन से ही इनमें स्वावलंबन की आदत डाली। हाय! मैं इन्हें कुछ नहीं सिखा पाई।"

"परेशान होने से क्या होगा बहन? इन्हें अभी भी सिखाने की कोशिश करो।" वीरा कहने लगी।

सावी उदास सी होकर कहने लगी—"बहन! तुम्हारी बात में ही सचाई थी। वह परिवार सुखी नहीं होता, जिसमें बहुत सारे सदस्य हों। वही परिवार सुखी होता है, जहाँ प्यार हो, शांति हो। अधिक बच्चों को जन्म देना माता-पिता का गौरव नहीं है। बच्चे चाहे कम हों, पर वे सुयोग्य हों, उसी में माता-पिता का गौरव है।"

"निराश न हो सावी! प्रयास करो, ईश्वर करे तुम्हारे बच्चे जल्दी ही योग्य बनें।" ऐसा कहकर वीरा ने सावी की पीठ थपथपाई और अपने बच्चों के साथ माँद में घुस गई। उसे अपने बच्चों पर गर्व हो रहा था। अंदर जाकर वीरा ने उन्हें गले से लगा लिया।



चटोरे भोजन भट्ट

भागवंती नाम की एक चुहिया थी। उसके दो बच्चे थे— चुनचुन और मुनमुन। भागवंती अपने बच्चों को बहुत प्यार करती थी। बच्चे थे भी बड़े योग्य। वे दोनों सुबह जल्दी उठ जाते, मन लगाकर शिक्षा लेते, माता–पिता और बड़ों का कहना मानते।

कुछ दिनों से चुनचुन–मुनमुन पड़ोस के बुरे बच्चों के साथ रहने लगे थे। उनमें एक गंदी आदत आ गई थी, वह थी चटोरेपन की। धीरे–धीरे वह आदत बढ़ती ही गई। दोनों को घर का खाना बिलकुल भी न भाता। माँ जो कुछ खाने को देती, उनमें थोड़ा–बहुत मुँह मारते और फिर इधर–उधर फेंक आते। माँ के डर से ही वे ऐसा करते थे। एक–दो बार भागवंती ने उनका काम देखकर डाँटा भी था।

चुनचुन और मुनमुन का स्वास्थ्य पहले बहुत अच्छा था। मोटा गोल–मटोल सा शरीर, दमकती काली आँखें। स्वस्थ होने के कारण वे सुंदर भी बहुत लगते थे। सुंदरता का सबसे बड़ा रहस्य अच्छा स्वास्थ्य ही है। उनके गोल–मोल शरीर को देखकर कई बार पूसी मौसी भी उन पर ताक लगा चुकी थी। पर हर बार उन्हें निराश ही होना पड़ा था, क्योंकि चुनचुन–मुनमुन बड़े ही फुरतीले थे। उन्हें पकड़ पाना सरल न था। खतरे का आभास भर होने पर वे बिजली की भाँति दौड़ जाते थे। पूसी मौसी को होठों पर जीभ फिराकर ही रह जाना पड़ता था।

पर धीरे–धीरे चुनचुन–मुनमुन दुबले होने लगे। भागवंती यह देखकर बड़ी चिंतित हुई। बच्चों के दुबले होने का कारण उसकी

समझ में न आया, वह तो पहले की ही भाँति उनके लिए पौष्टिक चीजें लाती थी। फल, मक्खन, बिस्कुट, रोटी आदि। भागवंती ने बच्चों पर निगाह रखनी शुरू कर दी। जल्दी ही उनके दुबले होने का कारण उसकी समझ में आ गया। वे घर का खाना तो छूते भर थे। वे दोनों चाट-पकौड़ी और मिठाई की दुकानों पर पहुँच जाते और वहाँ जी भरकर खाते।

भागवंती ने अपने बच्चों को बहुत समझाया। कहा—"बच्चो! तुम जैसा खाना खाओगे वैसा ही तुम्हारा शरीर बनेगा। देखो मिठाई और चाट-पकौड़े कभी-कभी खाना ही ठीक रहता है। इन्हें रोज-रोज खाने से तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो जाएगा। तुम बीमार पड़ जाओगे। तुम नहीं जानते कि ये चीजें ही खाकर तुम दिन पर दिन कितने दुबले होते जा रहे हो।"

"अब नहीं खाएँगे माँ!" दोनों बच्चे माँ से कहते, पर जैसे ही वे घर से बाहर निकलते थे, उनके मुँह में पानी भर आता। पैर अचानक ही उधर बढ़ जाते। मिठाई-चाट को देखकर उनके मुँह में लार निकलने लगती।

"न भैया न! हम नहीं खाएँगे खराब चीजें। माँ ने मना जो किया न।" चुनचुन ने कहा।

"सुन, बस आज ही खा लेते हैं। कल से फिर नहीं खाएँगे। इधर आएँगे भी नहीं।" मुनमुन कहता और दोनों एकदूसरे का हाथ पकड़कर उधर ही बढ़ जाते।

रोज-रोज ऐसा ही होता। उनका कल कभी आता ही न था। वे बस "कल" पर बात टालकर रह जाते थे। जो उसी समय काम नहीं करते, "कल-कल" करते हैं, वे हमेशा बेअक्ल ही रहते हैं। उनका सोचा कभी पूरा होता ही नहीं। आलसी और अविवेकी ही "आज नहीं कल" ऐसा सोचते हैं।

एक बार किसी त्योहार का अवसर था। कई दिनों पहले से दुकानों पर स्वादिष्ट चीजें बननी शुरू हो गईं थीं। चुनचुन-मुनमुन

की खूब बन आई। वे सबकी आँख बचाकर छककर खाते। चार-पाँच दिनों तक वे ऐसा ही करते रहे। उनके पेट खराब हो गए। पर दोनों ने खाने का मोह न छोड़ा। स्वाद-स्वाद में दोनों खूब खा जाते यहाँ तक कि उनके लिए चलना भी कठिन हो जाता, धीरे-धीरे वे घर पहँचते।

एक दिन जब वे टहलते हुए जा रहे थे कि पूसी मौसी ने उन्हें देख लिया। "आज नहीं बच पाओगे बच्चू।" मन ही मन उसने कहा और पीछे से चुपचाप चुनचुन की पूँछ पकड़ ली। चुनचुन घबराकर तेजी से भागा और सँकरी नाली में जाकर छिप गया। उसका दिल जोरों से धड़क रहा था। आज वह पूसी मौसी के मुँह में जाने से बाल-बाल बचा था।

काफी देर बाद चुनचुन-मुनमुन दोनों नाली से निकले, पर यह क्या चुनचुन की पूँछ ही गायब थी। अपनी कटी हुई पूँछ देखकर चुनचुन बहुत ही रोया।

अब दोनों के पेट में दरद भी होना शुरू हो गया था। जैसे-तैसे वे घर पहुँचे। उनके पेट का दरद बढ़ता ही जा रहा था। रातभर वे दोनों दरद से कराहाते रहे। भागवंती बेचारी दरद का कारण समझ ही न पा रही थी। वह दरद कम करने के लिए कभी कोई उपाय करती तो कभी कोई। पर इन सबके बाद किसी से कोई लाभ ही न हो रहा था।

सुबह होने पर भागवंती दौड़ी-दौड़ी गई और पड़ोस की बूढ़ी किस्सो चुहिया को बुला लाई। बच्चों को दिखाते हुए वह बोली—"ताई! तुम तो बड़ी अनुभवी हो, बच्चों को बचा लो। मुझे लगता है ये मरासू रखे हैं।"

किस्सो ने चुनचुन-मुनमुन के पेट जोर-जोर से दबा-दबाकर देखे। अपना सिर हिलाते हुए वह बोली—"भागो कोई खास बात नहीं है। तेरे बच्चे ज्यादा खा गए हैं। इसीलिए पेट में दरद हुआ है। पर हाँ री! इनकी आँतें भी बड़ी कमजोर हो गईं लगती हैं। इन्हें

महीने भर तक इधर-उधर की चीजें न खाने देना, नहीं तो सचमुच ही ये मर जाएँगे।''

भागवंती ने दिन-रात बच्चों पर कड़ी निगरानी रखनी शुरू कर दी। उनका बिल से बाहर निकलना भी बंद कर दिया। वह उन्हें बहुत ही परहेज का रूखा-सूखा भोजन देती थी। फिर भी जब-तब उनके पेट में दरद होने लगता था।

अब चुनचुन-मुनमुन की समझ में अपनी गलती आ गई थी। ठीक होने पर फिर कभी उन्होंने चाट-मिठाई की दुकान की ओर मुँह भी नहीं किया।

अब वे दूसरे बच्चों को भी अधिक चाट-मिठाई खाते देखते तो मुनमुन कहता—''न भाई न! अधिक न खाना इन्हें, नहीं तो बीमार पड़ जाओगे।''

''भाई! यदि खराब चीजें खाओगे तो हमेशा के लिए अपना स्वास्थ्य गँवा बैठोगे। स्वास्थ्य खराब होने पर फिर जीवन भार हो जाता है, इसलिए जीभ पर काबू रखो। जो भी खाओ सोच-समझकर खाओ। अच्छा स्वास्थ्य और अच्छी समझ जीवन की यह दो बहुत बड़ी संपत्तियाँ हैं।'' चुनचुन भी अपना सिर हिलाकर उसकी बात का समर्थन किया करता था।



अंधा दुबला

अभयारण्य में सुंदरी नाम की एक शेरनी रहा करती थी। उसके तीन बच्चे थे। एक बार दो बच्चे बीमार हो गए। उनकी बीमारी ठीक ही न हुई और वे मर गए। अब सिंहनी का एक ही बच्चा बचा था, उसका नाम शेरू था।

शेरू को उसके माता-पिता बहुत प्यार करते थे। वह उनका इकलौता बेटा था और उनकी आँखों का तारा था। वह जो भी जिद करता सुंदरी उसे पूरा करती। वह अपने बच्चे को रोते-झींकते या उदास होते नहीं देख सकती थी। ममता के कारण वह उसकी गलतियाँ भी नहीं देख पाती थी। शेरू यदि कोई गलत काम भी करता तो भी वह उसका पक्ष लेती। कहती—"अभी बच्चा है, बड़ा होकर अपने आप सँभल जाएगा।"

जो माता-पिता अपने बच्चों की हर जिद को पूरा करते हैं, उन्हें उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं कराते, उनके बच्चे बिगड़ते हैं। माँ के लाड़-दुलार की अधिकता से शेरू भी बिगड़ता चला गया। बच्चों की बुरी आदतें बचपन में तो अधिक बुरी नहीं लगती, बचपना लगती हैं। सभी हँसकर टाल देते हैं, पर बड़े होने पर छोटी-मोटी खराब आदतें भी बहुत बड़ी बुराई लगने लगती हैं।

वही जानवर जो बचपन में शेरू को लाड़-दुलार करते थे, अब रोज-रोज उसकी शिकायत लेकर आने लगे। एक दिन जग्गो लोमड़ी आकर रोने लगी—"महारानी जी! आप कृपया अपने बेटे को समझाइए। मैं खाने की खोज में गई थी। मेरे दो छोटे-छोटे बच्चे झाड़ियों के पीछे लेटे थे। बेचारों की अभी आँखें भी ठीक से नहीं खुल पाई हैं। शेरू लल्लू वहीं गया और खेल-खेल में उनकी आँखें

इतनी जोर से दबा आया कि अभी भी उनसे खून निकल रहा है। आप चलकर देखिए तो तनिक। हाय! मेरे बच्चों की आँखें ही न फूट जाएँ........।" यह कहकर जग्गो लोमड़ी सिसकने लगी।

सुंदरी तुरंत उसके साथ वहाँ दौड़ी गई। सुंदरी ने जग्गो के बच्चों की आँखों पर जड़ी-बूटी बाँधी। बहुत प्रयास किया, तब कहीं जाकर खून बहना बंद हुआ।

एक दिन लाली गिलहरी आई और कराहती हुई बोली—"देख लीजिए महारानी जी अपने सपूत की करतूत। मुझे जबरदस्ती पकड़कर सोते हुए हाथी दादा की सूँड़ में घुसेड़ दिया। उनकी सांस रुकने लगी तो हड़बड़ाकर उठ बैठे। उन्होंने जोर से छींका तो सूँड़ में से बैठी दूर छिटक गई। तभी से मेरे पैर की हड्डी टूट गई है। बड़ी मुश्किल से चलती हुई आप तक आ पाई हूँ।"

सुंदरी ने समझा-बुझाकर जैसे-तैसे लाली को घर भेजा।

एक बार हाथियों का एक झुंड आया और शिकायत करने लगा—"देखिए! यह भी कोई अच्छी आदत है? शेरू हममें फूट डलवाने की कोशिश करते हैं। वह चार-पाँच दिन से हर हाथी के पास जाते हैं और एकदूसरे की बुराई करते हैं। वह तो भला हो रन्नो हथिनी का, जिसने सभी को समझाया और शेरू की पोल खोल दी। ऐसा न होता तो हम सभी आपस में ही लड़-लड़कर मर जाते। चुगलखोरी की, एकदूसरे की बुराई की आदत स्वयं अपना ही अपमान कराया करती है।"

एक दिन तो सुंदरी का राजा चीते से झगड़ा होते-होते बचा। सुंदरी खा-पीकर सुस्ता रही थी कि तभी राजा आया और दहाड़ते हुए बोला—"कहाँ है वह शेरू का बच्चा? बताओ कहाँ है वह? आज मैं तुम्हें बताए देता हूँ कि फिर कभी उसने ऐसी कोई भी शरारत की तो उसे कच्चा ही चबा जाऊँगा, नहीं तो अपने कपूत को सँभालो।"

सुंदरी राजा का यह रौद्र रूप देखकर काँप उठी। "हे भगवान! आज तो जरूर कुछ अनहोनी घटने वाली है। यह शेरू न जाने क्या

कर आता है?" उसने मन ही मन कहा। वह राजा से बोली—"शांत हो जाओ भैया। आओ बैठो! शेरू बच्चा है, अभी कोई गलती कर आया है तो उसे माफ कर देना।"

"शेरू अब कोई बहुत छोटा बच्चा भी नहीं है। फिर बचपन से ही यदि खराब आदतें न छुड़ाई जाएँगी तो बड़े होकर भी बनी ही रहेंगी। सुनो! सुनाता हूँ आज की घटना। बताता हूँ कि तुम्हारा शेरू कितना धूर्त है? मैं अपने छोटे-छोटे बच्चों के लिए ताजा शिकार करके लाया था। मैं वहाँ से थोड़ी सी देर को हटा कि शेरू सारा का सारा मांस वहाँ से चुरा लाया। मुझे जब पता लगा तो मैं उसके पीछे दौड़ा। वह साफ झूठ बोल गया। कहने लगा कि मैं अपने आप शिकार करके लाया हूँ। मैंने कसकर एक झापड़ मारा तो भागता ही नजर आया। आज तो छोड़ दिया है, पर आगे कभी ऐसा किया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा उसे। आप ही बताइए कि झूठ बोलना, चोरी करना यह कोई अच्छी आदतें हैं? क्या यही सिखाया है आपने अपने बेटे को?" राजा चीता कह रहा था।

सुंदरी का सिर लज्जा से झुक गया। वह शेरू के पक्ष में एक शब्द भी न बोल पाई। उसे विश्वास था कि शेरू जरूर ऐसी ही शरारतें करके आया होगा। उसने बड़ी ही मुश्किल से राजा को वापस भेजा।

सुंदरी अब बड़ी परेशान थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे, क्या न करे, शेरू को समझाती तो उसकी बात कानों पर ही उतार देता। उसकी शरारतें और बुरी आदतें दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थीं। जंगल के सारे जानवर उससे परेशान थे। सुंदरी को डर था कि वे सब मिलकर कहीं किसी दिन उसे मार न दें। सुंदरी इसी चिंता में घुल-घुलकर दुबली होने लगी।

एक दिन सुंदरी उदास बैठी थी। तभी उसकी सहेली वीरा आई और आश्चर्य से बोली—"अरे ! तुम इतनी दुबली क्यों हो गई हो? यों उदास सी क्यों बैठी हो?"

सुंदरी ने अपनी उदासी का कारण बताया। वीरा कहने लगी— "देखो बहन ! बच्चे माता-पिता के व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य हो जाता है कि बचपन से ही बच्चों में अच्छी आदतें डालें, उन्हें अनुशासन का पालन करना भी सिखाएँ। यदि बचपन में ही बच्चों को यह सब नहीं सिखाया गया तो फिर बड़े होकर उन्हें यह सब सिखाना कठिन हो जाता है।"

"यही तो है, यही तो है।" सुंदरी सिर हिलाकर बोली।

वीरा फिर आगे बोली—"अभी तो बहुत नहीं बिगड़ा है। अभी भी समय है, जब तुम शेरू को सुधार सकती हो, अपनी गलती का परिमार्जन कर सकती हो। गलत करना जितना बुरा है, गलती को समझकर उसे न सुधारना उससे भी बुरा है।"

"सो तो है ही।" सुंदरी बोली।

"सोचो ! कल को बड़े होकर जब शेरू बुरे काम करेगा, तो क्या तुम्हारा नाम भी बदनाम न होगा ? सब कहेंगे—"यह सुंदरी का बेटा है।" सुंदरी बहन ! माता-पिता बच्चे को जन्म न दे पाएँ, यह इतना बुरा नहीं है, जितना बुरा है कि वे अपनी संतान को योग्य न बना पाएँ।"

"बोलो ! मैं क्या करूँ ? कैसे उसे सुधारूँ ?" सुंदरी व्याकुल होकर पूछने लगी।

वीरा बोली—"तुमने अपने लाड़ से उसे बिगाड़ा है। अब अपने दिल को तनिक कड़ा कर लो। जब वह गलत काम करे, तब उसे तनिक भी प्यार न करो। जब वह थोड़ा सा भी अच्छा करे, उसे पूरा-पूरा प्यार और प्रोत्साहन दो। शेरू की समझ में यह बात आ जानी चाहिए कि तुम्हारा प्यार अच्छाई के लिए है। यह दूसरों की भलाई करने पर ही उसे मिल सकता है। उसकी जिस बात से किसी को थोड़ी सी भी तकलीफ होगी, तो स्वयं दुखी होगी और उसे प्यार नहीं कर सकोगी।"

"तुम बहुत अच्छी बात कह रही हो।" सुंदरी बोली।

वीरा फिर समझाने लगी—"बहन ! शेरू की जो भी बुराइयाँ हों, उन पर विचार करो। कड़ाई से उन्हें छुड़ाने का प्रयास करो। अभी भी शेरू पूरी तरह बड़ा नहीं हुआ है। अभी समय है, वह सुधर सकता है।"

वीरा की बात सुंदरी की समझ में आ गई थी। उसके बतलाए उपाय का उसने कठोरता से पालन किया। कुछ ही दिनों में शेरू की आदतें छुड़ाने में वह सफल हो गई। अब कोई जानवर उसकी शिकायत लेकर नहीं आता। सच है कि माता ही बच्चे की निर्माता है, वही उसे अच्छा-बुरा बनाती हैं।



भालू की बहादुरी

भगेलू नाम का एक मदारी था। एक दिन वह जंगल के पास से जा रहा था। उसने देखा कि पगडंडी पर भालू का एक छोटा सा बच्चा पड़ा हुआ है। उसके दोनों पैरों में चोट लगी थी, खून बह रहा था। यह देखकर भगेलू को दया आ गई। उसने अपनी धोती फाड़कर भालू के बच्चे की पट्टी बाँधी, देर तक उसका सिर सहलाता रहा। तब तक खून बहना भी कुछ कम हो गया था। भगेलू आगे चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। जैसे ही वह दो-चार कदम बढ़ा होगा कि भालू का बच्चा गुर्राकर उसे बुलाने लगा। भगेलू पीछे लौटा, भालू का बच्चा उसके पैर चाटने लगा। भगेलू समझ गया कि भालू का बच्चा नहीं चाहता है कि वह वहाँ से जाए, पर उस जंगल में भला भगेलू कितनी देर और रुक सकता था? इसलिए उसने साइकिल पर पीछे भालू के बच्चे को बाँधा और घर की ओर चल पड़ा।

घर जाकर भगेलू ने जैसे ही भालू के बच्चे को उतारा कि पड़ोस के बहुत से बच्चे उसे देखने के लिए इकट्ठे हो गए। भालू का बच्चा इतनी सारी भीड़ को पहली बार अपने आस-पास देख रहा था। वह गुर्राने लगा। भगेलू समझ गया कि उसे यह अच्छा नहीं लग रहा है। "जाओ बच्चो ! फिर आना नहीं तो काट खाएगा।" यह कहकर भगेलू ने सभी बच्चों को भगा दिया।

भगेलू ने भालू के बच्चे को खूब पुचकारा, उसके घाव पर दवा लगाई और बहुत सी चीजें खाने के लिए दीं। भगेलू के पास कई बंदर थे, जिन्हें नाचकर खेल दिखाया करता था। उन्हीं के पास उसने भालू के बच्चे को भी बाँध दिया।

जल्दी ही भालू का बच्चा सभी से खूब हिलमिल गया। सारे बंदर उसके पक्के मित्र बन गए। वह उनसे खूब बातें करता। भगेलू तो उसे बहुत ही प्यार करता था। वह उसे खाने के लिए अच्छी-अच्छी चीजें देता। भगेलू ने प्यार से उसका नाम रखा था—मोती। उसने मोती को खूब सुंदर नाच भी सिखा दिया था। उसके पैरों में घुँघरू बाँध दिए थे। भगेलू के इशारे पर मोती ठुमक-ठुमककर ऐसा सुंदर नाचता कि देखने वाला बस देखता ही रह जाता।

एक दिन की बात है। भगेलू मोती को लेकर पास के गाँवों में गया। वहाँ मोती ने तरह-तरह का तमाशा दिखाया। भगेलू ने उसे बहुत सारी बातें सिखाई थीं, जैसे—पालती लगाकर, आँखें बंद करके ध्यान करना, हाथ जोड़कर नमस्कार करना, आरती उतारना, व्यायाम करना, नकल करना, नाचना आदि-आदि। एक गाँव में खेल दिखाते हुए भगेलू को रात हो गई। वहाँ से जाना तो जल्दी चाहता था, पर गाँव के बच्चों और बड़ों ने उसे ऐसा घेरा कि उठने ही न दिया। भगेलू को पैसे भी खूब मिल रहे थे, इसलिए भी उसने उठने की जल्दी नहीं दिखाई।

जब खेल खतम हुआ तो रात के आठ बजे थे। घुपाघुप अँधेरा हो रहा था। गाँव का रास्ता भी ऊबड़-खाबड़ था। जाड़े के दिन थे। ठंढी हवा बह रही थी। सरदी के कारण दाँत बज रहे थे। भगेलू सोच रहा था कि अब घर कैसे जाएँ? हलकी-हलकी बूँदाबादी शुरू हो गई थी, वह अलग। तभी गाँव के मुखिया ने भगेलू से कहा कि आज की रात वह उसी के यहाँ रह जाए। भगेलू ने खुशी-खुशी उसकी बात मान ली।

मुखिया ने भगेलू और मोती को खूब अच्छा खाना खिलाया। मोती को उन्होंने अपनी भैंसों के पास ही बाँध दिया। भगेलू अलाव के पास बैठा मुखिया से देर तक गप-शप करता रहा। फिर गरम-गरम रजाई में घुसते ही जल्दी ही सबको नींद आ गई।

नई जगह होने के कारण मोती को नींद नहीं आ रही थी। बहुत देर तक वह भैंसों से बात करता रहा। जब वे भी सो गईं तो वह बैठा-बैठा न जाने क्या-क्या सोचता रहा? बचपन से लेकर अब तक की सारी घटनाएँ उसकी आँखों के आगे घूम रही थीं। वह अपने मालिक के बारे में सोच रहा था कि वे कितने अच्छे हैं? उसका हर समय ध्यान रखते हैं और उसे कितना प्यार करते हैं?

सहसा तभी मोती ने खट-खट की आवाज सुनी। वह चौंक गया, उसने सिर उठाकर देखा। उस घने अँधेरे में भी मोती ने देख लिया कि सामने दो आदमी खड़े थे। वह सोच रहा था कि कौन हैं, कहाँ से आए हैं? क्यों आए हैं? तभी एक आदमी ने मोती के पास बँधी हुई भैंस को खोलना शुरू कर दिया। पल भर में ही मोती सारी बात समझ गया। "ओह ! ये तो चोर हैं। भैंस चुराने आए हैं।" अपने आप से उसने कहा। वह सोचने लगा कि मैंने मुखिया का अन्न खाया है। मुझे उनके प्रति वफादार होना ही चाहिए। यह बात भी उसके मन में कौंध गई कि उसका मालिक भी अंदर सोया है। हो सकता है कि सुबह होने पर वे समझें कि उसी ने चोरी कराई है और उसे मारें-पीटें, बुरा-भला कहें। "मुझे प्राण देकर भी मालिक पर आई विपत्ति को दूर करना होगा।" मोती ने मन ही मन कहा।

तभी मोती ने पाया कि एक आदमी मोती के पास खड़ा होकर उसकी रस्सी खोल रहा है। वह गलती से अँधेरे में मोती को भैंस समझ बैठा था। पल भर में ही एक विचार मोती के मन में आया। वह चुपचाप खड़ा रहा, पर जैसे ही रस्सी खोलकर आदमी उसे लेकर आगे बढ़ा कि मोती ने अपने दोनों पैरों पर खड़े होकर बड़े ही साहस के साथ दोनों हाथों से उसे कसकर पकड़ लिया। चोर बुरी तरह हड़बड़ा गया। वह जोरों से चीखने लगा। रस्सी उसके हाथ से छूट गई। अँधेरे के कारण दूसरा चोर भी समझ न पाया कि मामला क्या है? उसने समझा कि उसका साथी रंगे हाथों

पकड़ा गया है। अतएव वह भी भैंस छोड़-छाड़कर सिर पर पाँव रखकर वहाँ से भागा।

चोर की चीख सुनकर मुखिया और भगेलू भी जाग गए थे। दोनों लाठी लेकर बाहर दौड़े। टार्च से रोशनी डालने पर उन्होंने देखा कि मोती एक आदमी को कसकर पकड़े खड़ा है, दाँतों से उसे काट रहा है। एक भैंस खूँटे से खुली खड़ी है और वह भी रँभा रही है। तुरंत ही उसकी समझ में सारी बात आ गई। मुखिया ने आगे बढ़कर मोती का सिर थपथपाया। 'शाबाश मोती' और चोर को उसके पंजे से छुड़ाया। भगेलू ने रस्सी से कसकर चोर को बाँध दिया। "सुबह उसे थाने भेजेंगे।" मुखिया ने कहा।

मुखिया और भगेलू दोनों ने मोती को खूब प्यार किया और उसकी बहुत तारीफ की। "आज मोती के कारण हम इतनी बड़ी हानि से बचे हैं।" मुखिया कह रहा था।

सुबह होते ही सारे गाँव में मोती की बहादुरी की बात फैल गई। उसे देखने पूरा का पूरा गाँव ही इकट्ठा हो गया था। गाँव वाले उसके लिए बहुत सारे उपहार भी लाए थे। मुखिया ने भी प्रसन्न होकर भगेलू को बहुत सारा इनाम दिया था। यही नहीं, दूसरे दिन अखबार में मोती की बहादुरी की खबर छपी भी थी।



अन्यायी शासक

अभयारण्य में प्रभास नाम का एक सिंह रहता था। वन के सभी जानवरों ने उसे अपना राजा मान लिया था। वे सभी झुककर आदर करते थे। उसकी बात मानते थे, उसके अनुशासन में रहते थे। जब प्रभास नया-नया राजा बना था, तो कुछ दिनों तक तो ठीक चलता रहा, पर फिर धीरे-धीरे उसे घमंड होने लगा। वह वन के जानवरों से बड़ा कठोर व्यवहार करने लगा। हर किसी को बिना बात के फटकार देता। चाहे जब कभी किसी को अपमानित कर देता। सभी पशु-पक्षियों को वह तानाशाह शासक की भाँति दबाकर रखता। उसके राज में किसी को भी सिर उठाकर रहने की, सच कहने की हिम्मत न थी।

बात यहीं तक रहती, तब भी ठीक थी। प्रभास में एक और सबसे बड़ा दुर्गुण था, वह यह था कि कानों का कच्चा था। कुछ जानवर उसके सिर चढ़े थे, उसकी हर समय चापलूसी करते रहते थे। बस, उन्हीं की बात को प्रभास आँख मींचकर सच मान लेता था। वे जानवर किसी से भी अपनी दुश्मनी निकालने के लिए उसकी चुगली राजा से जाकर कर देते। प्रभास बिना सचाई परखे उन जानवरों को तंग करता। प्रभास के चुगलखोर-चापलूस गुप्तचर सारे वन में घूमते रहते। उनके सामने किसी की इतनी हिम्मत भी न होती कि खुलकर बात कर पाए। प्रभास के द्वारा अकारण सताए हुए किसी जानवर से ढाढ़स के दो शब्द भी कह पाए।

दिन पर दिन ऐसे ही बीतते जा रहे थे। प्रभास की तानाशाही निरंतर बढ़ती जा रही थी। वह और उसके चापलूस जानवर गुलछर्रे

उड़ाते, वे चाहे किसी को मार डालते और चाहे किसी को अपमानित कर देते। कुछ भी काम करते। इसके विपरीत जो काम करने वाले जानवर थे, वे हमेशा पिसते, दिनभर काम करते और ऊपर से फटकार खाते। प्रभास और उसके चापलूस सहायक चाहे कभी भी उनके कामों में दोष निकालते, उनकी निंदा करते। दूसरे जानवर कुछ बोलते नहीं थे। इसलिए भी प्रभास और उसके सहायक सिर पर चढ़ते जा रहे थे। अन्याय को चुप सहने से अन्यायी को बढ़ावा मिलता ही है।

उस दिन कपिल भैंसा बैठा था। तभी दूसरे वन से चेता नाम की लोमड़ी आई और उससे उदासी का कारण पूछने लगी। कारण जानकर चेता भड़क उठी। गुस्से से भरकर जोर से बोली—"उस दुष्ट प्रभास के अत्याचारी होने का कारण तुम सब ही हो। तुमने ही उसे सिर पर चढ़ाया है। तुम्हारी कायरता ने ही उसे बढ़ावा दिया है। तुम उसकी हर बात चुपचाप मान लेते हो इसलिए उसके अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं। धिक्कार है तुम्हारी कायरता को।"

तब तक मुक्ता हथिनी भी वहीं आ गई थी। उसने भी कहा—"अब तो अत्याचार की अति हो गई है। हम सबको मिलकर उससे लोहा लेना ही होगा।"

मुक्ता हथिनी, चेता लोमड़ी और कपिल भैंसा ने मिलकर सभी जानवरों की सभा की। वे जानवर बड़ी मुश्किल से आए थे। प्रभास के डर से वे कायर और डरपोक हो गए थे। प्रभास कहीं सभा में उनका जाना न सुन ले। इस बात से वे सभी जानवर बड़े भयभीत हो रहे थे।

सभा के प्रारंभ में सबसे पहले मुक्ता हथिनी बोली। उसने कहा—"प्यारे भाइयो और बहनो! सबसे पहले तो मैं आपको धन्यवाद देती हूँ कि आप यहाँ इकट्ठे हुए हैं। मैं यह भी जानती हूँ कि आप मन ही मन डर रहे हैं, पर जरा विचार कीजिए कि आखिर आप डर क्यों रहे हैं? डरना चाहिए गलत काम से, डरना चाहिए ईश्वर से।

अन्यायी से डरना तो कायरता है......, कायर बनकर हम अन्याय को बढ़ावा देते हैं। धिक्कार है हमें जो अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहते रहते हैं.........घुट-घुटकर जीते हैं। इससे तो वीरतापूर्वक अत्याचारी का सामना करके मर जाना सबसे अधिक अच्छा है।"

कपिल भैंसा कहने लगा—"साथियो ! वही शासक बनने योग्य होता है, जो सभी से समान व्यवहार करता है। जो समय पर कठोर भी होता है और आवश्यकता पड़ने पर कोमल व्यवहार भी करता है। उसी शासक को सब ही चाहते हैं। जिस शासक के हृदय में अपने सहायकों के लिए प्रेम और सहानुभूति नहीं है, वह कभी उनका मन नहीं जीत सकता।"

कालू भालू बोला—"धिक्कार है, हमें जो अयोग्य शासक के अधीन रहते हैं। धिक्कार है जो हम संख्या में सैकड़ों होकर भी उसके अत्याचार सहते रहते हैं। भाइयो! उठो-जागो, मिलकर एकजुट होकर उस अन्यायी का सामना करो।"

कालू भालू बोल ही रहा था कि तभी प्रभास वहाँ आ गया। आते ही वह दहाड़ने लगा। वह सोच रहा था कि हर रोज की भाँति उसके डर से अभी सारे जानवर वहाँ से भाग जाएँगे, पर हुआ इसका उलटा ही। मुक्ता के इशारे पर सारे जानवर प्रभास पर टूट पड़े। दूसरे ही क्षण वह अपनी जान बचाने के लिए वहाँ से तेजी से भागा। दूसरे जंगल में जाकर ही प्रभास ने सांस ली।

अब उस जंगल में दूसरा ही राजा राज्य करता था। वह प्रभास को तरह-तरह अपमानित करता। प्रभास अधिकतर मुँह छिपाए एक गुफा में पड़ा रहता था। मन ही मन पछताता रहता था—"हाय! न मैं जानवरों को सताता और न वे यों विद्रोह करते। अपने चापलूस सहायकों के बहकावे में आकर मैंने अपना ही सर्वनाश कर लिया। वे मुझे मिल जाएँ तो एक-एक को खत्म कर दूँ......। अपमान और प्रतिशोध के इन्हीं भावों से वह कुढ़ता रहता था। कुछ ही दिनों में वह इतना दुबला हो गया कि मुश्किल से ही पहचाना जाता था।"

इधर प्रभास के चापलूस जानवरों की कम दुर्दशा न थी। उस जंगल के सारे जानवर उनसे चिढ़े हुए थे। जहाँ भी वे निकलते सारे जानवर मिलकर हू-हुल्लड़ करने लगते। वे अच्छी तरह जानते थे कि उन्हीं की चुगली के कारण प्रभास उन्हें सताया करता था। इसीलिए सारे जानवर उन चापलूसों को सबक सिखाने पर उतारू थे। डर के कारण वे रात के अँधेरे में ही भोजन की तलाश में निकलते। थोड़ा-बहुत जो कुछ खाने को मिल जाता, उसी से जैसे-तैसे अपना गुजारा करते। प्रभास के सहायक जहाँ भी जुटते आपस में लड़ते-झगड़ते। सभी एकदूसरे को इस स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराते और दोष देते। एक दिन उनका झगड़ा इतना बढ़ गया कि वे आपस में ही लड़कर मर गए।

अब जंगल के सारे जानवरों ने खूब खुशियाँ मनाईं। प्रभास और उनके साथियों के न होने से वे बड़े प्रसन्न थे। सच है कि जहाँ अन्याय होता है, वहाँ विद्रोह की ज्वाला भी उत्पन्न हो जाती है। अन्याय और अत्याचार करने वाले शासक थोड़े समय चाहे भले ही मनमानी कर लें, पर अंत में उनकी दुर्दशा ही होती है। अपने कर्मों का फल तो सभी को मिलता ही है।



मातृभूमि की रक्षा

बहुत दिनों की बात है। गंगा नदी के एक सुनसान तट पर मेंढकों का एक विशाल राज्य था। मेंढकों के राजा थे जगतपति। जगतपति के पूर्वज दस पीढ़ी पहले आकर बस गए थे। तभी से वे यहाँ रहते चले आए थे। पहले प्रजा की संख्या कम थी, परंतु अब तो उसकी जनसंख्या भी बढ़ गई थी।

वर्षाऋतु थी। प्रत्येक मेंढक फूला न समा रहा था। वर्षा की ऋतु तो उनके लिए त्योहार होती है। ढेरों मेंढक अपनी हरी-पीली वरदी पहनकर घर से निकल पड़ते। कहीं बच्चों को चलने-कूदने की शिक्षा दी जाती तो कहीं साँप से बचने की। कभी उन्हें भाषा का ज्ञान कराया जाता, तो कभी यातायात के नियमों का।

रोज ही कीड़े-मकोड़ों की फसल से दावत होती। बुजुर्ग मेंढक छोटे मेंढकों को जीभ के इधर-उधर घुमाने का एक विशेष व्यायाम सिखाते। कुछ ही दिनों में वे इतने निपुण हो जाते कि उनकी जीभ से छू भर जाने पर कोई भी कीड़ा-मकोड़ा बचकर न भाग सके। उनकी जीभ पर लगे गोंद से चिपक जाते। इस प्रकार बच्चे, जवान, बुड्ढे खूब दावतें उड़ाते।

दावत के बाद उनका सांस्कृतिक कार्यक्रम होता। कभी गान विद्या प्रतियोगिता होती और वे विविध राग अलापते। कभी तेज दौड़ होती, तो कभी लंबी कूद का आयोजन होता, फिर जगतपति के हाथों पुरस्कार पाते।

मेंढकों के झुंड के झुंड हँसते, गाते, नाचते एक मोहल्ले में से दूसरे मोहल्ले में जाते। कभी किसी के यहाँ उत्सव मनाया जाता तो

कभी किसी के यहाँ कुछ। किसी के यहाँ नए बच्चे का नामकरण होता तो किसी के यहाँ विवाह होता। किसी के यहाँ अखंड कीर्तन चलता तो किसी के यहाँ जन्मदिन समारोह। इस प्रकार जब तक वर्षा ऋतु रहती; वे हँसते, गाते और मौज मनाते। पेड़-पौधे नहा-धोकर नए और सुंदर-सुंदर वस्त्र पहनकर उनका स्वागत करते। वे अपने हाथों से ताली बजा-बजाकर उन्हें प्रोत्साहन देते। वर्षा की समाप्ति पर कुंभकर्ण की भाँति पूरा मेंढक समाज अगली वर्षा आने तक गहरी नींद में सो जाता। वर्षों से बिना किसी विघ्न-बाधा के उनका यही क्रम चला आ रहा था।

पर एक बार उनके इस क्रम में आखिर व्यवधान पड़ ही गया। देशाटन पर निकले एक मगरमच्छ और एक मगरमच्छी को वह स्थान इतना अधिक पसंद आया कि उन्होंने वहीं रहने का निश्चय कर लिया। गंगा का शीतल और पवित्र जल, चारों ओर दीखते सुंदर पर्वत, वृक्षों की शीतल छाया, जंगली फलों की मोहक खुशबू, सभी ने उनका मन मोह लिया था। फिर क्या था, उन्होंने वहीं पर अपना डेरा डाल दिया।

अब तो मगरमच्छ और मगरमच्छी जल में यों ही घूमते, मानो वे ही वहाँ के एक छत्र राजा और रानी हों। मेंढकों का जल में इधर-उधर तैरना उन्हें बिलकुल भी न भाया। मेंढकों की संख्या भी बहुत सारी थी। उनकी फौज जब पानी में तैरती, तो कभी कोई मेंढक मगरमच्छों से टकरा जाता कभी कोई। मगरमच्छ इसे अपना अपमान समझते। वे सोचते थे कि मेंढक जान-बूझकर उन्हें टक्कर मारते हैं।

एक दिन मगरमच्छी और मगरमच्छ गंगा के किनारे लेटे थे। हलकी सुहावनी धूप में दोनों की आँख लग गई। तभी बहुत से मेंढक घूमते हुए वहाँ आए और उनसे टकरा गए। वास्तव में इसमें मेंढकों का कोई दोष भी न था। मगरमच्छ और मगरमच्छी उस समय पेड़ों के तनों की भाँति लग रहे थे। इसलिए मेंढक गलती से उनसे टकराए थे न कि जान-बूझकर, पर मगरमच्छ और मगरमच्छी

ने इसे मेंढकों की शरारत समझा। उन्होंने गुस्से में अपनी पूँछ फटकारी, दाँत निकाले और आँखें लाल-लाल कर लीं। दाँत किटकिटाकर मगरमच्छ बोला—"याद रखना! मैं तुममें से एक को भी जिंदा नहीं छोड़ूँगा।"

दूसरे ही दिन से मगरमच्छों का "मेंढक मारो" अभियान शुरू हो गया। जितने मेंढक उनसे मारे जाते, मारते। कुछ खा लेते, कुछ अगले दिन खाने के लिए बालू में गाड़ देते, क्योंकि बासा मांस बहुत अच्छा लगता, हर रोज का यही क्रम था।

तेजी से मेंढकों की संख्या में कमी होने लगी। सभी मेंढक घबराने लगे। आखिर करें तो करें भी क्या? इतने बड़े जीव का वे बिगाड़ भी क्या सकते थे? अब तो उन्हें एक ही रास्ता सूझता था कि अपने प्राणों की रक्षा के लिए वे यह जगह छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाएँ, पर जगतपति इसके लिए बिलकुल तैयार न था। उसका कहना था कि हमने मेहनत करके इस जगह को रहने लायक बनाया है, हम वर्षों से यहाँ रह रहे हैं। इस पर पहला अधिकार हमारा है, यह हमारी मातृभूमि है। हम मर जाएँगे, पर इसे छोड़कर कहीं पर न जाएँगे।

"पर कुछ न कुछ तो सोचना ही होगा? आखिर कब तक हम यों अपना विनाश सहते रहेंगे?" सारे के सारे मेंढक एक स्वर से बोले।

"हम संख्या में उनसे बहुत अधिक हैं। शत्रु के विरुद्ध हम एकजुट होकर मोर्चा लेंगे। शारीरिक बल से नहीं, बुद्धि से उसे हटाकर ही मानेंगे।" जगतपति बोला।

दूसरे दिन तड़के ही जगतपति ने अपने कुछ सहायकों को साथ लिया और मगरमच्छ से बात करने उसके पास पहुँचा। उसने अपने साथ लाया उपहार मगरमच्छ के सामने रख दिया और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—"मगरमच्छजी ! मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

पर मगरमच्छ ने उसकी बात अनसुनी कर दी। जगतपति सोचने लगा कि मगरमच्छ ने उसकी बात सुनी नहीं है। अतएव वह दूसरी बार और अधिक जोर से बोला।

मगरमच्छ ने गुस्से से आँखें तरेरकर हुँकारकर कहा—"क्या है जल के कीड़े?"

जगतपति को यह बहुत बुरा लगा। आखिर आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। हम सभी एकदूसरे के साथ मिल-जुलकर प्रेम से रहें यही अच्छा है। भगवान की दृष्टि में सभी समान हैं। न कोई छोटा है और न बड़ा।

मगरमच्छ गरजा—"ज्यादा बढ़-चढ़कर न बोल। आखिर किस बात में तू मेरे समान है?"

"हर बात में।" जगतपति बोला।,

मगरमच्छ बोला—"लगाएगा शर्त।"

"हाँ।" जगतपति बोला।

देख ज्यादा घमंड न कर। हारेगा तो यहाँ से हमेशा के लिए भागता ही नजर आएगा।

"आप भी तो हार सकते हैं।" जगतपति धीरे से बोला।

यह सुनकर मगरमच्छ का गुस्सा बहुत ही भड़क उठा। वह बोला—"दुष्ट जुबान चलाता है। तू इतना तुच्छ है कि मैं समझ ही नहीं पा रहा कि तेरे साथ क्या शर्त लगाऊँ?"

जगतपति बोला—"हम दोनों ही जल में रहने वाले जीव हैं। चलिए हम नदी में तैरने की शर्त रखें। जो तैरकर जल्दी ही ऊँचे पत्थरों पर चढ़कर बैठ जाएगा—वही जीता हुआ माना जाएगा।"

"मगरमच्छ को यह शर्त बड़ी मामूली लगी। वह सोचने लगा कि मेंढक निश्चित ही हार जाएगा।"

तभी जगतपति पूछ बैठा—"यह भी बताइए कि जीतने वाले को क्या मिलेगा?"

गर्व से अकड़कर मगरमच्छ बोला—"जीतने वाला यहाँ रहेगा और हारने वाले को यहाँ से भागना होगा। तैयारी कर ले अब तू अपने पूरे कुनबे सहित यहाँ से भागने की।.........और देख हाँ, शर्त तो लगा गया है। कल यदि तू निश्चित समय पर न आया तो तेरी खैर नहीं।"

"मैं जरूर आऊँगा।" कहकर जगतपति अपने साथियों सहित वहाँ से लौट पड़ा। उसके सभी साथी हक्के-बक्के थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि राजाजी को आखिर आज क्या सूझी कि ये ऐसी शर्त लगा आए।

घर जाकर जगतपति ने सौ एक जैसे मेंढकों को बुलाया। वे सभी रंग-रूप में जगतपति से मिलते-जुलते थे। उन्हें उसने अपनी योजना समझाई।

दूसरे दिन जगतपति और मगरमच्छ निश्चित समय पर आ पहुँचे। विजय की कामना से मगरमच्छी ने मगरमच्छ के और मेंढकों ने जगतपति के बालू का तिलक लगाया। फिर वे दोनों जल में अपना-अपना पराक्रम दिखाने कूद पड़े।

मगरमच्छ आराम-आराम से तैर रहा था। वह मन ही मन में यह सोच-सोचकर खुश हो रहा था कि आज सारे मेंढक हमेशा के लिए यहाँ से चले जाएँगे, पर यह क्या? जैसे ही उसने आगे की ओर देखा। वह यह देखकर दंग रह गया कि जगतपति उसके आगे तैर रहा था। मगरमच्छ ने अपनी चाल बढ़ा दी, जिससे वह जल्दी से जल्दी पत्थरों की टेकरी पर चढ़ सके। पूरी तेजी से तैरता-हाँफता मगरमच्छ रास्ते में यह देखकर चकित रह जाता कि जगतपति उसके आगे ही तैर रहा है। यहाँ तक कि पत्थर की टेकरी पर भी उससे पहले ही चढ़ा हुआ मिला।

मगरमच्छ का सिर शरम से झुक गया। एक छोटे से जीव से वह हार गया था। जो अपने आप पर घमंड करता है और काम में लापरवाही बरतता है, उसे नीचा देखना ही पड़ता है। सफल वह होता है, जो बेकार का घमंड नहीं करता, अपितु पूरे मन से काम करता है। अपने वायदे के अनुसार मगरमच्छ और मगरमच्छी दोनों ही गंगा का वह तट छोड़कर चुपचाप ही हमेशा के लिए वहाँ से चले गए।

अपनी योजना सफल होती हुई देखकर जगतपति आज बहुत खुश था। मगरमच्छ से जीत पाना मुश्किल था। उसने अपने ही जैसे रंग-रूप वाले सौ मेंढक जगह-जगह पानी में अंदर की ओर छिपाकर बिठा दिए थे। वह पहले से ही पत्थरों के पास पानी में छिपकर बैठ गया था। मगरमच्छ को आते हुए देखकर जगतपति तेजी से छलांग लगाकर पत्थर पर चढ़ गया था।

सभी मेंढक इकट्ठे होकर जोर-जोर से जगतपति की जय बोल रहे थे। जगतपति कह रहा था—"भाइयो! विपत्ति में कभी भी धैर्य नहीं खोना चाहिए। आपत्ति में रोने और परेशान होने से वह बढ़ती ही है, कम नहीं होती। यदि हम मुसीबत में धैर्यपूर्वक विचार करें, उसके अनुसार कार्य करें तो निश्चित ही कोई न कोई हल तो निकलता ही है। मुसीबतें भला किस पर नहीं आया करतीं? पर जो साहस से, मनोबल से उनका सामना करता है, उसकी ईश्वर भी सहायता करता है, वही विजय पाया करता है।"

जगतपति ने देखा कि कुछ मेंढक खुसर-पुसर कर रहे हैं। वह चौंका, कुछ समझा और बोला—"साथियो ! हमने शत्रु को छल-बल से जीता है, पर मातृभूमि की रक्षा करना नितांत अनिवार्य है। शत्रु की दुष्टता दूर करने के लिए उसी की नीति से उसे हराना होता है। बस स्वयं वैसा नहीं बनना चाहिए।"

जगतपति का मंत्री कहने लगा—"महाराज ठीक ही कहते हैं। यह हमारी मातृभूमि है, जो भी इस पर अपना अधिकार जमाना चाहेगा, उसके हम दाँत खट्टे कर देंगे। जिस रीति से भी संभव होगा, शत्रु को भगाकर ही दम लेंगे।"

सभी मेंढकों ने अपने राजा और मंत्री की बात का समर्थन किया तथा उन्होंने विजय की खुशी में शानदार दावत भी की। उस दिन तो वे खुशी के मारे फूले न समा रहे थे। सारे दिन वे उछलते-कूदते, खाते-पीते, धमा-चौकड़ी मचाते रहे।



सच्ची सुंदरता

दंडकारण्य में भास्कर नाम का एक खरगोश रहता था। उसकी एक ही बेटी थी। वह बड़ी सुंदर थी। गुलाबी और सफेद रंग, रोयेदार शरीर, लंबे कान, मोटी पूँछ, गुलाबी प्यारी आँखें, जो भी उसे देखता मुग्ध हो जाता। भास्कर ने बड़े प्यार से उसका नाम रखा था—रूपा। वास्तव में वह अपने नाम के अनुरूप ही थी।

इतना सम्मान पाकर रूपा को अभिमान होने लगा। वह अपने सामने सभी को तुच्छ समझने लगी। घमंड में भरकर वह दूसरों का अपमान भी करने लगी। एक दिन जब चुहिया उसके साथ खेलने आई तो अपनी आँखें चढ़ाकर रूपा बोली—"ओह ! मैं तुम जैसे गंदे जीवों के साथ नहीं खेलूँगी। न ही मैं तुम्हें सहेली बना सकती हूँ। ओह, क्या रूप-रंग पाया है, मटमैला-घिनौना......। जाओ तुम तो अपने जैसे में ही शोभा पाओगी।"

प्रीति को रूपा की यह बात बहुत ही बुरी लगी। उसने कठोर उत्तर भी देना चाहा, पर शालीनतावश बस इतना ही कह पाई—"रूपा! यह शरीर तो जैसा भी है, सुंदर या कुरूप, भगवान का दिया हुआ है। हम सब तो बस इस शरीर को गुणों से ही सुंदर बना सकते हैं।"

एक दिन रूपा अपनी सहेलियों के साथ अमलताश के पेड़ के नीचे बैठी थी। तभी उसकी निगाह पेड़ पर चढ़ते हुए गिरगिट पर गई। उस गिरगिट को देखते ही वह अपने नन्हें-नन्हें दाँत निकालकर हँस पड़ी और बोली—"वाह भाई वाह! क्या रूप पाया है जनाब ने।"

गिरगिट ने जब यह सुना तो उसे बड़ा ही गुस्सा आया। गुस्से में अपनी पूँछ फटकार कर, आँखें निकालकर, रंग बदलकर वह

जोर से बोला—"अरी घमंडी! जरा ठीक से बात कर, सारा रंग-रूप तेरी ही बपौती नहीं है। छह-सात रंग बदलने का वरदान ईश्वर ने बस मुझे ही दिया है। घमंड करना बाद में, पहले जरा मेरी तरह रंग बदलकर तो दिखा।"

रूपा कुछ कहने ही जा रही थी, पर गिरगिट की क्रोध से भरी आँखें देखकर उसकी सहेली ने उसे चुप कर दिया।

एक दिन हाथी का बच्चा विशू केले के नीचे बैठा आराम कर रहा था। रूपा उसकी पीठ पर चढ़ गई और फुदकते हुए बोली—"वाह-वाह! नाक हो तो विशू जैसी जमीन झाड़ती, आसमान छूती। पैर हों तो ऐसे—लगे जैसे मकान के चार खंभे ही चले आ रहे हैं। दाँत हों तो ऐसे तलवारों जैसे—मुँह फाड़कर निकलते हुए......।"

रूपा अभी कुछ और ही बोल रही थी कि विशू ने गुस्से में भरकर उसे अपनी सूँड़ से उठाया और दूर फेंक दिया। वह चिंघाड़कर बोला—"और यदि कोई हो तो विशू जैसा गलत करने वाले को तुरंत दंड देने वाला।"

विशू ने रूपा को इतने जोर से फेंका था कि वह केले के पेड़ से बहुत दूर एक गहरे गड्ढे में जा पड़ी। बरसात के दिन थे, गड्ढे में खूब पानी भरा था। रूपा उसमें डूबने लगी। तभी उसकी निगाह गड्ढे में रहने वाले राजेश मेंढक पर पड़ी। वह हाथ जोड़कर और रिरियाकर बोली—"भैया ! मुझे अभी इस गड्ढे में से निकाल दो, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

मेंढक को रूपा पर दया आ गई। उसने उसे अपनी पीठ पर बिठाया और एक ही छलाँग में उसे साथ लेकर गड्ढे से बाहर निकल आया।

गड्ढे से बाहर निकलकर रूपा कराह उठी। उसकी एक आँख बुरी तरह दरद कर रही थी, खुल ही नहीं रही थी। जैसे-तैसे उसने घर जाने के लिए कदम बढ़ाए, पर यह क्या? उसका दाहिना पैर तो आगे बढ़ ही नहीं रहा था। उससे एक कदम भी नहीं चला

जा रहा था। रूपा सोच भी न पाई कि वह कैसे घर जाए? तभी उसकी निगाह सामने से आते मेंढक, गिलहरी और बतख के झुंड पर पड़ी। उसने लाख अनुनय-विनय की, पर उनमें से कोई भी उसे घर तक छोड़ जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। उन सभी को अपना अपमान याद आ रहा था। वह अपमान रूपा ने घमंड में भरकर समय-समय पर किया था। सच है कि घमंडी की सहायता करने के स्थान पर सभी मुँह फिरा लेते हैं।

आखिर हारकर रूपा अकेले ही लँगड़ाती हुई घर की ओर चली। शिकारी कुत्तों, लोमड़ी आदि से बचती-बचाती घंटों में वह घर पहुँच पाई। उसके माता-पिता उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देखते ही वह बोले—"अरे बिटिया ! इतनी देर से कहाँ रह गई थीं तुम?"

रूपा ने रोते-रोते सारी बात बताई। भास्कर तुरंत उसे लेकर प्रसिद्ध डाक्टर चिन्मय खरगोश के यहाँ गया। चिन्मय ने रूपा की आँख से एक लंबा काँटा निकाला। काँटा निकलते ही खून की धार छूट पड़ी। बड़ी मुश्किल से खून निकलना बंद हुआ। पैर पर भी प्लास्टर बाँधना पड़ा, क्योंकि हड्डी टूट गई थी।

दो महीने बाद रूपा का पैर तो ठीक हो गया, पर उसकी आँख हमेशा के लिए खराब हो गई थी। अंत में चिन्मय डाक्टर ने भी कह दिया था—"अब यह आँख किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकती?"

डाक्टर की बातें सुनकर घर आकर रूपा फूट-फूटकर रोने लगी। जिस सुंदरता पर उसे बहुत गर्व था, वही अब सदैव के लिए समाप्त हो गई थी। रूपा कानी हो गई थी। आँख के कारण उसकी सारी की सारी सुंदरता नष्ट हो गई।

निरंतर आँसू बहाती हुई रूपा को भास्कर समझाने लगा—"बेटी! शरीर की सुंदरता तो कभी भी नष्ट हो सकती है। उस पर गर्व करना मूर्खता ही है। हम स्वयं नहीं जानते कि हमारा सुंदर शरीर कल किस स्थिति में होगा? न जाने कब कौन सा रोग, कौन सी विपत्ति इस शरीर पर आ पड़े।"

पिता की बातें सुनकर रूपा सिसकते हुए बोली—"हाय! मैं तो कुरूप हो गई। अब कौन मुझे प्यार करेगा?"

रूपा की माँ उसे समझाते हुए बोली—"बेटी ! शरीर की सुंदरता वास्तविक सुंदरता नहीं है और शरीर की कुरूपता भी वास्तविक कुरूपता नहीं है। सच्ची सुंदरता होती है गुणों में, व्यवहार में। तुम अपने मन को, व्यवहार को सुंदर बनाओ। तब सभी तुम्हें प्यार करेंगे और सदैव-सदैव के लिए सम्मान भी करेंगे। हमेशा याद रखना कि अच्छा स्वभाव सुंदरता की कमी को सहज ही पूरा कर देता है। उसके आकर्षण में बँधकर सुंदरता की याद भी नहीं आती, परंतु सौंदर्य की पराकाष्ठा भी अच्छे स्वभाव की कमी को पूरा नहीं कर सकती।"

भास्कर खरगोश भी रूपा को समझाते हुए बोला—"स्वच्छता, सादगी और सुरुचि ये तीनों गुण जहाँ आ जाते हैं, वहाँ सुंदरता भी दिखाई देने लगती है। तुम बाहरी चमक-दमक में न पड़ो, इसी सच्ची सुंदरता को अपनाने का प्रयत्न करो।"

रूपा अपने नथुने सिकोड़कर, पूँछ हिलाते हुए बोली—"हाँ! आप ठीक कहते हैं। फिर वह अपने आँसू पोंछकर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई।" "मुझे अब अपने व्यवहार को सुंदर बनाना होगा।" वह सोचती जा रही थी।



चंदा और उसकी सहेली

वाराणसी में गंगा के तट पर एक पीपल का बहुत बड़ा पेड़ था। उस पेड़ पर एक चिड़िया रहती थी। नाम था उसका चंदा। पीपल की जड़ में शालू नाम की एक चींटी रहती थी। धीरे-धीरे चंदा और शालू में मित्रता हो गई। दोनों साथ-साथ घूमतीं, साथ-साथ बातें करतीं और एकदूसरे के दुःख-मुसीबत में सहायता भी करतीं।

चिड़िया थी मस्त। काम करती कम, अधिकतर गाती और फुदकती रहती। चींटी सारे दिन परिश्रम करती। एक दिन चंदा चिड़िया शालू से बोली—"अरी ! क्यों तू सारे दिन काम करते-करते मरी जाती है। आखिर क्या फायदा है इससे तुझे? आराम से भी रहा कर।"

चंदा की बातें सुनकर शालू ने अपना सिर ऊपर उठाया और बोली—"दीदी ! बुरा न मानना। परिश्रम ही जीवन में उन्नति करने का महान मूलमंत्र है। आलसी और कामचोर कभी सफलता नहीं पाता।"

"हाँ ! यह बात तो है।" चंदा ने भी उसकी बात के समर्थन में अपना सिर हिलाया। शालू की बात से, उसके काम से चंदा बड़ी ही प्रभावित थी। उसे इतनी अच्छी सहेली पा लेने का काफी गर्व था।

जाड़े आने वाले थे, अतएव शालू तेजी से जाड़ों के लिए सामग्री इकट्ठी करने में जुट गई। अपने नन्हें से मुँह में दबाकर वह कभी अनाज का दाना लाती, कभी चीनी तो कभी और कुछ। उसे सुस्ताने तक की फुरसत न थी। चंदा सारे दिन देखती रहती कि उसकी सहेली बिना रुके निरंतर काम में लगी रहती है। चंदा की इच्छा हुई कि वह भी शालू की सहायता करे। चंदा तो खाना इकट्ठा नहीं करती थी। जब भूख लगती तभी खाना ढूँढ़ती और खाकर फिर फुदकने लगती।

चंदा बोली—"शालू बहन ! एक बात कहूँ ?"

"जरूर कहो।" पलभर को शालू रुकी और बोली।

मैं सोच रही थी कि तुम अकेली-अकेली खाना इकट्ठा करने जाती हो। छोटा सा तो तुम्हारा मुँह ही है। थोड़ा-थोड़ा करके लाती हो। कल से मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। अपने चोंच में दबाकर एक बार में अधिक चीज ले आऊँगी। इस प्रकार तुम्हारा काम जल्दी खतम हो जाएगा।

शालू ने ध्यान से उसकी बात सुनी, विचार किया और बोली— "न बहन ! यह उचित नहीं है।"

"क्यों ? क्या मैं मित्र होते हुए भी तुम्हारी जरा सी सहायता नहीं कर सकती ?" चंदा पूछने लगी।

"बहन बुरा न मानना। मित्रता की भी एक सीमा होती है, जो मित्रता मर्यादाओं को स्वीकार नहीं करती, जिसमें कोई नियम और कोई अनुशासन नहीं होता, वह मित्रता बहुत ही जल्दी नष्ट हो जाती है। ऐसी मित्रता का अंत लड़ाई और मनमुटाव होता है।" शालू ने बताया।

चंदा चुप बैठी रही। वह जानती थी कि उसकी यह बहुत ही बुद्धिमान सहेली चाहे कड़वी बात कहे, पर उसकी बात बड़ी ही खरी होती है।

शालू फिर कहने लगी—"खाना इकट्ठा करने का यह काम एकाध दिन का तो है नहीं। यह तो बहुत दिन तक चलेगा और हर साल चलेगा।"

आखिर तुम कब तक मेरी सहायता करोगी ? हाँ, दुःख-मुसीबत में तो मैं जरूर तुम से यह आशा करूँगी कि संकट में पड़कर भी मेरी सहायता करो। सच्चा मित्र वही है जो सुख में, दुःख में, सभी स्थितियों में सदैव मित्र की सहायता करे।

शालू फिर पूछने लगी—"तुमने मेरी बात का बुरा तो नहीं माना बहन ?"

"न बहन न ! भला मैं बुरा क्यों मानने लगी? मैंने तुमसे आज बहुत अच्छा सबक लिया है कि मित्रता में धैर्य से, मर्यादा से काम लो। कभी ऐसा काम न करो, जिससे मित्र के मन में कोई दुराव आए। यदि हम चाहते हैं कि अच्छा मित्र पाकर उसे खो न दें तो कभी ऐसे काम भी न करें कि मित्र से मनमुटाव की बात उठे। सच्चा मित्र पा लेना जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है........। मुझे तुम जैसी मित्र पर गर्व है।" यह कहते-कहते चंदा की आँखें भर आईं।

चंदा और शालू आज भी पक्की सहेलियाँ हैं। सच्चे मित्र के रूप में सदैव उनका उदाहरण दिया जाता है। सच है, सोच-विचार कर व्यवहार करने वालों की मित्रता सदैव स्थाई रहती है।



नेकी का रास्ता

एक उद्यान में नीम के पेड़ पर बने एक कोटर में चुनचुन गिलहरी रहती थी। उसके घर में थे—एक बूढ़ी माँ और तीन बच्चे। चुनचुन का पति दो वर्ष पहले ही एक गाड़ी के नीचे कुचलकर मर गया था।

दो वर्षों से चुनचुन बड़ी मुसीबतें झेल रही थी। पड़ोसियों ने उसकी ओर से आँखें फिरा ली थीं। वही रिश्तेदार जो उसके पति के रहते घंटों उसके यहाँ बैठते थे, अब उसकी ओर मुँह भी न करते थे। अधिकतर पड़ोसी और रिश्तेदार सोचते थे कि चुनचुन अकेली है। उसकी सहायता करनी होगी, इसलिए उससे दूर ही रहा जाए। इसलिए चुनचुन अकसर अपनी माँ से कहा करती थी—"माँ जी ! जो दुःख-मुसीबत में साथ देता है, वही सच्चा मित्र होता है। विपत्ति में मित्र की परख होती है।"

चुनचुन सुबह से शाम तक काम करते-करते थक जाती। उसकी पीठ दरद करने लगती, पर क्या मजाल किसी ने उसकी कराह भी सुनी हो। यही नहीं वह दूसरों का काम करने को भी तैयार रहती। बच्चे कहा भी करते थे—"माँ ! तुम्हें सब मूर्ख बनाते ही रहते हैं। वैसे तो तुमसे बात भी नहीं करते, काम पड़ने पर भागे चले आते हैं।"

चुनचुन कहती—"रहने दो बेटा ! उनकी करनी उनके साथ, मेरी करनी मेरे साथ। दूसरे बुरा करने से नहीं हटते तो मैं भलाई के रास्ते से क्यों हटूँ ?"

एक दिन जब चुनचुन फल इकट्ठे करने के लिए उद्यान में घुस रही थी, तो उसने जगह-जगह यह चर्चा सुनी—"मयूरजी के बेटे की आँखें बहुत बुरी तरह से आ गई हैं। कोई दवा उसे लाभ नहीं कर रही है, कहीं वह बेचारा अंधा न हो जाए।"

चुनचुन मन ही मन बड़बड़ाई—"हो जाए अंधा तो हो जाए, तब पता लगेगा मयूर को कि बेटे का दरद क्या होता है ?"

चुनचुन के इस आक्रोश का भी एक कारण था। पिछले दिनों उसकी बेटी बीमार पड़ गई थी। डाक्टर नीतू लोमड़ी ने उसके इलाज के लिए जो जड़ी-बूटी बताई थी, वह सिर्फ मयूर दादा ही पहचानते थे, वही तोड़कर ला सकते थे। चुनचुन दौड़ी-दौड़ी उनके पास गई थी और उन्हें सारी बात बताई थी, पर मयूरजी ने गरदन नचाकर कह दिया था—"ओह ! मेरे पास बड़े-बड़े काम हैं। इन छोटी-छोटी बातों के लिए मैं कहाँ तक दौड़ता फिरूँगा।"

और बेचारी चुनचुन अपना सा मुँह लेकर लौट आई थी। साथ ही यह भी कह आई—"दादाजी ! हम साथ-साथ एक ही समाज में रहते हैं। इसलिए एकदूसरे की सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है। यह न भूलना कि जिन्हें हम छोटा कहकर उनकी उपेक्षा करते हैं, वे भी कभी न कभी काम आते हैं।"

और मयूर ने बड़ी जोर से केंआ-केंआ करके तिरस्कार भरी दृष्टि उस पर डाली।

जैसे ही चुनचुन फलों की गठरी लेकर कोटर के पास पहुँची थी कि कलिया कोयल बोली—"सुना! तुमने कि मयूरनी का बेटा कहीं अंधा न हो जाए।"

चुनचुन ने सुनकर भी अनसुना कर दिया। वह चुपचाप कोटर में घुसने लगी कि कलिया ने उसे फिर रोक लिया और बोली—"सुनो! तुम अपनी वाली आँखों की दवा तो उसे देकर देखो।"

वास्तव में उस उद्यान में आँखों की छूत की बीमारी फैली थी। गिलहरी को उसकी बड़ी अच्छी दवा मालूम थी। उसने कईयों की आँखें उससे ही ठीक की थीं।

रातभर गिलहरी सोचती रही—"ओह ! दवा न देकर मैंने अच्छा नहीं किया। बच्चे-बच्चे सब एक से, जैसा मयूरजी का बेटा

वैसा मेरा। यह ठीक है कि बुरे को सबक देना चाहिए, पर उसी तरह से जिससे उसकी बहुत बड़ी हानि न हो, वरन उसे अपनी गलती पता लग जाए। सुबह ही मैं स्वयं दवा लेकर जाऊँगी। मैं भलाई करना क्यों छोड़ूँ? बुरे के साथ बुरा ही करें, तो हमारी महानता ही क्या रही?"

सुबह गिलहरी जल्दी उठी। जल्दी-जल्दी अपने घर का काम निपटाया। फिर वह अमरूद के पत्ते तोड़कर लाई। उन्हें बारीक-बारीक पीसा, उसमें एक दवा मिलाई और उसे लेकर मयूर के घर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में ही मयूर मिल गया। उसके पैरों पर गिरते हुए बोला—"मुझे माफ कर दो चुनचुन। मैंने तुम्हारे साथ अपनी मूर्खता के कारण बुरा व्यवहार किया था। आज मैं तुमसे भीख माँगता हूँ, अपनी दवा देकर मेरे इकलौते बेटे की आँखें बचा लो।"

चुनचुन ने तुरंत दवा उसके आगे कर दी और समझाने लगी कि उसे आँखों के ऊपर-नीचे रखकर पट्टी बाँध दें।

"ओह! कितनी अच्छी हो तुम चुनचुन। बुरा करने वाले का भी भला करती हो। मैं तुम्हारा आभार कैसे व्यक्त करूँ?" मयूर गद्गद कंठ से बोला।

चुनचुन मुस्कराकर आगे बढ़ गई। मयूर भी दौड़ा-दौड़ा घर की ओर चला। चुनचुन की दवा से दो-चार दिनों में ही उसके बेटे की आँखें पूरी तरह ठीक हो गईं।

"मैं चुनचुन का क्या उपकार करूँ?" कई दिनों तक मयूर सोचता रहा, फिर उसने चुनचुन को अपना सलाहकार घोषित कर दिया। मयूर ने सोचा कि चुनचुन उसे सभी के हित की सलाह देगी, सभी का भला करने की प्रेरणा देगी।

इतना ऊँचा पद पाने पर सभी ने चुनचुन की सराहना की। नेकी के रास्ते पर चलने वाला प्रारंभ में भले ही कष्ट पा ले, पर अंत में उसे अच्छा ही फल मिलता है।

उन्नति का रास्ता

दिलीप खाते-पीते मध्यमवर्गीय परिवार का बालक था। उसके पिताजी बैंक में नौकरी करते थे। परिवार की गाड़ी हँसी-खुशी से चल रही थी, पर सहसा ही एक दुर्घटना घटी। दिलीप के पिताजी को कैंसर हो गया और उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। उनकी बीमारी पर पानी की तरह पैसा बहाया गया, पर कोई लाभ न हुआ। अंत में एक दिन वे पत्नी और बच्चों को रोते-बिलखते दुनिया से चल बसे।

दिलीप के नन्हें-नन्हें कंधों पर असमय ही परिवार का भार आ गया। वही सबसे बड़ा बालक था। उसकी माँ रो-रोकर अधमरी हो रही थी। एक ओर वह उनको धैर्य बँधाता, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे भाई-बहनों को। दिलीप तो मानो पत्थर बन गया था। कभी बहुत मन दुखी होता तो एकांत में रो लेता।

घर की सारी जमा पूँजी, माँ के जेवर बीमारी में काम आ चुके थे। माँ शिक्षित भी नहीं थी कि नौकरी कर लेतीं। पिता की मृत्यु के बाद थोड़े दिन तक जैसे-तैसे काम चल रहा था, पर फिर खाने के भी लाले पड़ गए। दुःख-मुसीबत के समय नाते-रिश्तेदारों ने भी मुँह मोड़ लिया। अधिकांश व्यक्ति सुख के ही साथी होते हैं। जो मुसीबत में सहायता करता है, कठिन परिस्थिति में भी साथ देता है, वही सच्चा हितैषी है।

छोटे भाई-बहनों को भूख से बिलखते देखकर दिलीप कराह उठा। उसने निश्चय किया कि वह पढ़ाई छोड़कर नौकरी करेगा, जिससे परिवार का पेट भर सके। माँ भी उसकी बात सुनकर चुप

रही, क्योंकि और कोई उपाय शेष न था। दिलीप से छोटे बच्चे भी अभी छोटे ही थे।

दिलीप को एक कारखाने में शीशे की खाली बोतलें धोने का काम मिला। मालिक चाहता था कि काम बहुत जल्दी हो, इसलिए बीच-बीच में दिलीप को डाँटता रहता था। जल्दी में टूटी बोतलों का काँच उसके हाथों में चुभ जाता और खून निकलने लगता। दिलीप का नन्हा मन रो उठता, पर वहाँ कौन था उसे सांत्वना देने वाला। किसी के कहने-सुनने से लाभ भी क्या था? घर आकर भी इस विषय में दिलीप माँ को कुछ न बताता। वह जानता था कि इससे माँ को बहुत दु:ख होगा और वे नौकरी छुड़वा देंगी। माँ के पूछने पर कभी वह कोई बहाना बना देता तो कभी कोई, परंतु माँ बिना कुछ कहे-सुने भी समझती थी। थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने किसी के घर नौकरी कर ली और दिलीप की नौकरी छुड़वा दी। घर का खरच जैसे-तैसे चलाते हुए उन्होंने दिलीप को हाईस्कूल की परीक्षा भी दिलवाई। दिलीप चाहता था कि वह भी नौकरी करता रहे, पर माँ ने स्पष्ट मना कर दिया। वे बोलीं—"बेटा ! यदि तुम पढ़ोगे नहीं तो जीवन भर मजदूरी ही करते रहोगे। परिवार का उत्तरदायित्व निभा सकते हो, कुछ महीनों की बात है, आगे काम साथ-साथ करना।"

दिलीप ने माँ की बात मान ली। वह जी-जान से पढ़ाई में जुट गया, जिससे अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो सके। परीक्षाफल आया तो दिलीप को आशा के अनुरूप सफलता मिली थी। उसकी तीन विषयों में विशेष योग्यता थी। अब दिलीप ने विद्यालय में प्रवेश ले लिया। उसके लिए छात्रवृत्ति भी स्वीकृत हो गई। स्कूल से आकर दिलीप खाली न बैठता। घर पर भी वह छोटा-मोटा काम करता रहता, जिससे खाली समय में थोड़ी कमाई हो जाती। जल्दी ही दिलीप को छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाने का काम भी मिल गया। अपनी रुचि के अनुसार काम पाकर दिलीप बड़ा प्रसन्न था। वह

मन से पढ़ता और पढ़ाता था। स्कूल के अध्यापक और बच्चों के घर पर अभिभावक सभी उससे बहुत प्रसन्न रहते। पूरे मन से और पूरी शक्ति से जो कार्य किया जाता है, वह निश्चित रूप से सफलता भी देता है।

दिलीप का परिश्रम जल्दी ही सफल हुआ। अच्छे अंकों के आधार पर उसे डाकघर की प्रतियोगिता में सम्मिलित होने का अवसर मिला; दिलीप ने वहाँ भी सफलता पाई। उसकी नियुक्ति डाकघर में हो गई है। परिवार वाले अब सभी प्रसन्न हैं। दिलीप अपनी सफलता का सारा श्रेय अपनी माँ को देता है, क्योंकि वही उसका मनोबल बढ़ाती थीं। दिलीप कठिनाइयों में उदास और परेशान होता था, तो वे उसे प्यार से समझाती थीं कि धूप-छाँह की भाँति सुख और दुःख जीवन में आते-जाते रहते हैं, परंतु जो कठिनाइयों में भी मनोबल को ऊँचा रखता है, प्रतिकूल परिस्थितियों का धैर्य से मुकाबला करता रहता है और सूझ-बूझ से काम लेता है, वही जीवन में सफल होता है।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा / ६३